

194

भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

विधिशिक्षा तथा वृत्तिक प्रशिक्षण और अधिवक्ता
अधिनियम, 1961 तथा विश्व विद्यालय अनुदान
आयोग अधिनियम, 1956 में संशोधनों
के प्रस्तावों के विषय

पर

184वीं रिपोर्ट



दिसम्बर, 2002

- 3246 / 2002

न्यायाधिपति
जगन्नाथ राव
अध्यक्ष,

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली- 110001
दूरभाष: 3384475
निवास:
1, जनपथ
नई दिल्ली: 110011
दूरभाष: 3019465
20.12.2002

एफनं 6(3)(62)/99—एलसी०(एल एस)

प्रिय श्री के० जनकृष्ण मूर्ति जी,

इस पत्र के साथ "विधि शिक्षा तथा वृत्तिक प्रशिक्षण और अधिवक्ता अधिनियम, 1961 तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 में संशोधनों के प्रस्ताव" विषय पर 184वीं रिपोर्ट संलग्न कर रहा हूँ।

आयोग ने 'विधि शिक्षा' विषय पर स्वेच्छा से विचार प्रारम्भ किया क्योंकि उक्त विषय न्याय प्रणाली की बुनियाद का मूल आधार है। वर्ष 1999 में आयोग ने अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में कतिपय संशोधन करने के प्रस्तावों का एक कार्यपत्र निकाला था। इस कार्यपत्र की विषय वस्तु व्यापक थी और उसमें पांच अध्याय थे। इसके अध्याय I में भूमिका, अध्याय II में 'विधि शिक्षा और वृत्तिक प्रशिक्षण से संबंधित विषय', अध्याय III में 'वृत्तिक दक्षता और सामाजिक उत्तरदायित्व', अध्याय IV में 'विदेशी विधि परामर्शियों का प्रवेश और विधि व्यवसाय का उदारीकरण, और अध्याय V में 'वृत्ति प्रबंध और विकास' विषय थे। तथापि, वर्तमान रिपोर्ट में आयोग ने अपनी सिफारिशों को केवल "विधि शिक्षा और वृत्तिक प्रशिक्षण" विषय तक सीमित रखा है। भारतीय विधिज्ञ परिषद् (भा.वि.प.) को अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1) (ज) के अंतर्गत विधि शिक्षा के प्रोन्यन्त तथा ऐसी शिक्षा प्रदान करने वाले विश्व विद्यालयों के परामर्श से मानक निश्चित करने की शक्ति प्रदान की गई है। विश्व विद्यालय अनुदान आयोग को भी, विश्व विद्यालय आयोग अधिनियम, 1956 (वि.आ.अ.) की धारा (च) के अंतर्गत विधि शिक्षा के मानक निश्चित करने के लिए विश्वविद्यालयों और संलग्न महाविद्यालयों पर नियंत्रण रखने की शक्ति प्राप्त है। भा.वि.प. विश्व विद्यालयों से परामर्श करके विधिशिक्षा के मानक विहित कर सकती है। किन्तु व्यवहार में, भा.वि.प. के लिए प्रत्येक विश्व विद्यालय से परामर्श करना संभव नहीं है और अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में ऐसी कोई प्रणाली नहीं दी गई है जिससे कि इस विषय में प्रभावशोल ढंग से परामर्श किया जा सके। अतः इस रिपोर्ट में आयोग ने यह प्रस्तावित किया है कि विश्व विद्यालय अनुदान आयोग को अपनी एक 'विधि शिक्षा समिति' गठित करनी चाहिए जिसमें विभिन्न विनिर्दिष्ट फेकल्टी सदस्यों को सम्मिलित किया जाए। आयोग ने सिफारिश की है कि वि.आ.अ. की "विधि शिक्षा समिति" के गठन के लिए एक पृथक उपबंध रखने के लिए संशोधन किया जाए। आयोग ने यह सिफारिश भी की है कि उक्त आयोग अपनी "विधि शिक्षा समिति" में से तीन सदस्यों के नाम भा.वि.प. की "विधि शिक्षा समिति" के प्रयोजन के लिए भेजेगा। आयोग का प्रस्ताव है कि भा.वि.प. की "विधि शिक्षा समिति" में उच्चतम न्यायालय के एक सेवा निवृत न्यायाधीश तथा किसी एक उच्च न्यायालय के एक सेवा निवृत मुख्य न्यायाधीश अथवा सेवा निवृत न्यायाधीश सम्मिलित किए जाने चाहिए और उनका नामांकन भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किया जाना चाहिए। तदनुसार आयोग ने अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 10 (2) में संशोधन करने की सिफारिश की है। भा.वि.प. की विधि शिक्षा समिति को विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करना चाहिए। उसे विनिर्दिष्ट परामर्श की प्रक्रिया की अपेक्षाओं को पूरा करना होगा। परामर्श की प्रक्रिया के लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की प्रस्तावित धारा 10अ में उपबंध किया गया है। इसके अतिरिक्त यह सिफारिश भी की जा रही है कि अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7 (1) (ज) का संशोधन करके इस अधिनियम में "विधि शिक्षा मानक" अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया जाए। विधि आयोग का मत है कि देश में विधि विद्यालयों को मान्यता प्रदान करने और उनकी गुणवत्ता का आकलन करने का कार्य भारतीय विधिज्ञ परिषद् और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया जाना चाहिए जिससे कि एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा का बातावरण तैयार हो सके। आयोग का यह मत भी है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (धारा 89)

में हाल ही में किए गए संशोधनों की दृष्टि से तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सालेम अधिकक्ता संघ बनाम भारत का संघ राज्य, 2002 (8) स्केल 146 में आज्ञापक प्राक्रिया के बारे में किए गए सम्प्रेक्षणों के अनुरूप विधि विद्यार्थियों, वकीलों और न्यायाधीशों को 'वैकल्पिक विवाद निस्तारण' प्रणाली की शिक्षा दी जानी चाहिए।

आयोग का यह मत है कि वकीलों तथा सेवा निवृत न्यायाधीशों में से अंशकालिक आधार पर सहयोजित अध्यापक नियुक्त करने की प्रणाली को पुनः लागू करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

आयोग के मत में विधि के शिक्षकों को, विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा चलाए जा रहे विद्यमान पुनः शिक्षण पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, वृत्तिक प्रशिक्षण प्रदान करना आवश्यक है। तदनुसार आयोग ने यह सुझाव दिया है कि भारत के चारों कोनों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग केन्द्र सरकार द्वारा भा.वि.प. से परामर्श करके कम से कम चार महाविद्यालय स्थापित किए जाने चाहिए।

आयोग ने सिफारिश की है कि हर विधि स्नातक को वकील संघ में दस वर्ष का अनुभव रखने वाले अधिकक्ता से प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए तथा बार परीक्षा में भी अहता प्राप्त करनी चाहिए और उसके पश्चात् वी उसे अधिकक्ता के रूप में सूचीबद्ध करने की अनुमति दी जानी चाहिए जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने विश्वविद्यालय सुदूर बनाम भा.बा.कां, 1999 (3) एस सी सी 176 में सुझाव दिया है।

अपनी सिफारिश को स्वरूप प्रदान करने के लिए इस रिपोर्ट के साथ एक प्रारूप-विधेयक संलग्न किया जा रहा है जिससे कि संशोधनों को विधिरूप में प्रस्तुत किया जा सके।

सादर,

भवदीय,

हॉ

(न्या० एम० जगन्नाथराव)

श्री के० जनकृष्ण मूर्ति,
विधि व न्याय मंत्री
शास्त्री भवन, नई दिल्ली।

विषय-सूची

प्रम संख्या	पृष्ठ संख्या
अध्याय I	भूमिका 1-3
अध्याय II	भारतीय बार काउंसिल तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की अपनी अपनी भूमिका-संवैधानिक तथा कानूनी परिप्रेक्ष्य 4-9
अध्याय III	भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधिशिक्षा समिति की सदस्यता 10-13
अध्याय IV	विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विधिशिक्षा समिति तथा परामर्श प्रक्रिया 14-19
अध्याय V	विधिशिक्षा, विधिदक्षता और मूल्यों के मानदण्ड (मैक केट रिपोर्ट) तथा नई वैश्वीकरण समस्याएं तथा मान्यता 20-25
अध्याय VI	विद्यार्थियों और वकीलों के लिए वैकल्पिक विवाद निस्तारण प्रशिक्षण 26-28
अध्याय VII	वकील संघों तथा न्यायाधीशों में से सहयोजित अध्यापक 29-32
अध्याय VIII	अनुज्ञाएं और निरीक्षण 33-38
अध्याय IX	परीक्षा प्रणाली, समस्या पद्धति तथा विधि अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र 39-42
अध्याय X	विधिशिक्षा साहित्य विषय की शिक्षा 43-45
अध्याय XI	महाविद्यालय या विश्वविद्यालय का सहयोजन से वंचित किया जाना 46
अध्याय XII	प्रशिक्षण और प्रशिक्षुता 47-53
अध्याय XIII	पदच्युत या निष्कासित कर्मचारियों की निरहता तथा धारा 24अ 54-55
अध्याय XIV	सिफारिशों का संक्षेप 56-59
उपांचंद	"अधिकक्ता (संशोधन) विधेयक, 2003 का प्रारूप 60-66

अध्याय I

भूमिका

1.0 विधि शिक्षा के विषय को भारत के विधि आयोग ने स्वयं अपनाया क्योंकि उक्त विषय को न्याय प्रणाली की बुनियाद के लिए आधारभूत समझा गया। आयोग ने 1999 में एक कार्यपत्र तैयार किया जिसमें अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का अधिनियम 25) में संशोधनों के प्रस्ताव रखे गए। इस कार्यपत्र में पांच अध्याय थे। अध्याय I में भूमिका, अध्याय II में 'विधि शिक्षा और वृत्तिक प्रशिक्षण से संबंधित विषय' अध्याय III में 'वृत्तिक दक्षता और सामाजिक उत्तरदायित्व', अध्याय IV में 'विदेशी विधि परामर्शियों का प्रवेश और विधि व्यवसाय का उदारीकरण', और अध्याय V में 'वृत्ति प्रबंध और विकास'। तथापि हम वर्तमान रिपोर्ट को केवल 'विधि शिक्षा' तक सीमित रख रहे हैं।

1.1 विधि आयोग को भारतीय विधिज्ञ परिषद्, विभिन्न राज्यों की विधिज्ञ परिषदों, वकील संघों और सदस्यों से अनेक प्रत्युत्तर और व्यपदेश प्राप्त हुए जिनमें उनमें से कुछ ने सुझावों को स्वीकार किया और कुछ ने सुझावों पर आपत्ति जताई। हम पहले कुछ महत्वपूर्ण सुझावों/व्यपदेशों के बारे में उल्लेख करेंगे।

भारतीय विधिज्ञपरिषद् का प्रत्युत्तर

1.2 भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने 3.8.2000 के अपने पत्र में व्यापक सुझाव दिए हैं। परिषद् ने कुछ प्रस्तावों को स्वीकार किया, कुछ को खारिज किया और कुछ धाराओं में और संशोधन करने के सुझाव दिए। ये सुझाव कार्यपत्र में धारा 2 (ज), 3(2ख), 4(1), 7(1)(ग), 9 (1), 10(2), 9(1), 10(2), 9अ, 7(1),(ज), 24(1), (पपक), 24(प) (च), 24 (1), 24अ(1)(ग), 33अ, 49(1), (कज्ञ) (कड़), (कट), (कठ), (कड़), (कछ), (चच), (इ), (छछ), (चच), धारा 49अ, 45, 24 (1)(ख), 36आ, 3(2)(क) में प्रस्तावित संशोधनों/नये उपबंधों से संबंधित हैं। हम इस रिपोर्ट में इन सभी सुझावों का उल्लेख नहीं कर रहे हैं क्योंकि वर्तमान रिपोर्ट की विषय वस्तु सीमित है और उसका संबंध केवल विधि शिक्षा तथा कुछ अन्य सम्बद्ध विषयों से है। दूसरे शब्दों में हम वर्तमान रिपोर्ट में उन समस्त आधारों का उल्लेख नहीं करना चाहते जिनका उल्लेख कार्यपत्र में है।

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग का प्रत्युत्तर:

1.3 विश्व विद्यालय अनुदान आयोग ने तारीख 19.9.1999 के अपने पत्र में विधि शिक्षा व्यवसाय की गुणवत्ता में सुधार की बाबत विधि आयोग द्वारा उठाए गए कदम का स्वागत करते हुए प्रोफेसर उपेन्द्र बक्शी की अध्यक्षता में 'पाठ्यक्रम विकास केन्द्र' की 1988-1999 की रिपोर्ट का उल्लेख किया है। इस रिपोर्ट का भाग I लगभग 100 पृष्ठों का और भाग II लगभग 740 पृष्ठों का है। उक्त रिपोर्ट 1988-99 के दौरान विशेषज्ञ शिक्षाविदों की एक टीम द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिए तैयार की गई थी। विंअ०आ० ने अपने पत्र में टिप्पणी की है कि विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए कार्यपत्र में दुर्भाग्यवश विशेषज्ञ समिति की उक्त रिपोर्ट का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

आयोग ने यह कथन भी किया है कि विधि शिक्षा के विषय में विंअ०आ० का पैनल "विंअ०आ० तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् के बीच बेहतर विचार विमर्श की बाट जोह रहा था"। इसके पश्चात् विंअ०आ० ने विधि आयोग के कार्यपत्र के अध्याय I और II के संबंध में अपने विचार प्रकट किए हैं। आयोग ने धारा 7(1)(ज) और धारा 10 (2)(ख) में प्रस्तावित संशोधनों का उल्लेख किया है। भारतीय विधिज्ञ परिषद् विधि शिक्षा समिति के विधि शिक्षकों के और अधिक प्रतिनिधित्व की मांग करते हुए आयोग ने सुझाव दिया कि उक्त समिति में विंअ०आ० के सचिव को या विधि मंत्रालय के सचिव को सदस्य के रूप में सम्मिलित करना आवश्यक नहीं था जैसी कि वर्तमान स्थिति है, और राष्ट्रीय विधि विद्यालय, बंगलौर (नेशनल ला स्कूल) के निदेशक को भी सदस्य के रूप में सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं है, जैसाकि प्रस्तावित है। यह भी उल्लेख किया गया कि विंअ०आ० 'विधि शिक्षा के मानक' विषय के नियंत्रण के लिए संवैधानिक रूप से सशक्त है। यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि विंअ०आ० ने जिस उपरोक्त विशेषज्ञ समिति का उल्लेख

कहा है उसने भी अपनी रिपोर्ट में इस बात पर खेद प्रकट किया था कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने किसी भी क्रम पर न तो विश्व विद्यालयों से कोई परामर्श किया था और न विअंआ० से। उपरोक्त पत्र में अन्य विषयों एवं भी विभिन्न सुझाव दिए गए थे।

1.4 हम यहां इस बात का उल्लेख करना चाहते हैं कि सन् 2000 में विंअ०आ० द्वारा गठित पाठ्यक्रम विकास समिति (पांविंस०) द्वारा सन् 2001 में एक नया 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदर्श पाठ्यक्रम' तैयार किया गया था। (यह 500 पृष्ठों में है।) वास्तव में विंअ०आ० के विधि विशेषज्ञ पैनल ने पाठ्यक्रम विकास समिति 1988 में तैयार किए गए एल०एल०एम० तथा एल०एल०बी० (आनर्स) के पाठ्यक्रमों का पुनरीक्षण करने और उन्हें अद्यतन करने का कार्य आरम्भ किया था। यह कहा गया था कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने यद्यपि एल०एल०बी० के लिए पाठ्यक्रम को पहले ही प्रस्तुत कर दिया है कि किन्तु क्योंकि उसने ब्यौरेबार विषयों को तैयार नहीं किया था अतः पाठ्यक्रम विकास समिति इस विषय पर कार्य कर रही थी। एल०एल०एम० तथा एल०एल०बी० (आनर्स) के लिए गठित इस समिति में प्रोफेसर सी० एम० जरीवाल, प्रो० एन० एस० चन्द्रशेखरन, प्रो० बी०के० भंसल, प्रो० कौ० एल० भाटिया, प्रो० मूल चन्द्र शर्मा० प्रो० हरगोपाल रेड्डी, प्रो० टी० भट्टाचार्य सम्मिलित थे और प्रो० पी० लीलाकृष्णन उसके संयोजक थे। एल०एल०बी० का पाठ्यक्रम तैयार करने वाली समिति में आठ सदस्य थे जिनमें प्रो० रणवीर सिंह और प्रो० एम० पिन्हेरो भी थे। विंअ०आ० की पाठ्यक्रम विकास समिति की नई रिपोर्ट तारीख 9.3.2001 की है।

1.5 विधि आयोग का ध्यान एक अन्य रिपोर्ट की ओर भी आकर्षित किया गया है, अर्थात् अधीनस्थ विधि पर संसदीय समिति की रिपोर्ट (1993-94) जिसमें सात अध्याय हैं और यह रिपोर्ट विधि व्यवसाय के विभिन्न पक्षों के विषय में है। उक्त रिपोर्ट में अध्याय VI में 'विधि शिक्षा की निरंतरता और विधि पाठ्यक्रम पुनर्गठन' विषय पर तथा अध्याय VII में 'रजिस्ट्रीकरण के पुनर्नवीकरण' विषय पर चर्चा की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए कार्यपत्र में भी इस रिपोर्ट का उल्लेख नहीं किया गया है।

संकाय (फैकल्टी) के विचारः

1.6 आयोग को संकाय की ओर से भी विचार प्राप्त हुए हैं जो विधि शिक्षकों की राष्ट्रीय कानूनोंमें, अर्थात्, ऑल इण्डिया टीचर्स कांग्रेस ने दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि संकाय में आयोजित (22–25 जनवरी 1999) कानूनोंमें प्रकट किए गए थे। उक्त कानूनोंमें देश के 460 विधि महाविद्यालयों का प्रतिनिधित्व करने वाले विधि शिक्षकों ने भाग लिया था। कानूनोंका उद्घाटन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधिपति श्री एसव्ही॰ मजूमदार ने किया था। कानूनोंने विधि शिक्षा के विभिन्न पक्षों की बाबत अनेक पृष्ठों में इस विषय पर एक पृथक वाल्यम प्रकाशित किया था। उसने विभिन्न संकल्प भी पारित किए थे। कानूनोंसे ने भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा (3 वर्ष और 5 वर्ष के विधि पाठ्यक्रम के लिए) 'पुनरीक्षण पाठ्यक्रम' का उल्लेख किया है। समस्त देश से आये सम्पूर्ण संकाय की मुख्य शिकायत यह थी कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1)(ज) के अंतर्गत विश्वविद्यालयों से 'परामर्श' की अपेक्षा का अनुपालन नहीं कर रही थी। इस ओर संकेत किया गया कि धारा 7 (1)(ज) के अंतर्गत उक्त विधिज्ञ परिषद् के कृत्योंमें से एक कृत्य निम्नलिखित था, अर्थात्:

“विधि शिक्षा का प्रोनन्दयन तथा भारत में ऐसी शिक्षा देने वाले विश्व विद्यालयों के साथ और राज्य विधिज्ञ परिषदों के साथ परामर्श करके ऐसी शिक्षा के लिए भानक नियत करना।”

तथा यह विचार सर्वसम्मति से व्यक्त किया गया कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् विश्व विद्यालयों के साथ परामर्श किए बिना विधि के विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम का न तो पुनरीक्षण कर सकती थी और न पाठ्यक्रम नियत कर सकती थी। यह बात भी कही गई कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् की कार्यवाही अधिनियम के उपबंधों की दृष्टि से अवैध थी। कान्फ्रेंस ने आयोग को संबोधित तारीख 24.7.1999 के अपने पत्र में यह सुझाव भी दे डाला कि विधिज्ञ परिषद् की कोई भी भूमिका विधि शिक्षा के विषय में अथवा पाठ्यक्रम निश्चित करने के विषय में नहीं होनी चाहिए और ये विषय एक पश्चक निकाय के मौजे जाने वाली विद्यालयों की विधि के

1.7 बाद में नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इण्डिया यूनीवर्सिटी (एन एल एस यू आई) ने 12.8.2002 को बंगलौर में अपने 10वें कन्वोकेशन के साथ सम्मिलित रूप से विधि शिक्षा संस्थानों के अध्यक्षों की प्रथम राष्ट्रीय परामर्शी कान्फ्रेंस आयोजित की। इसका उद्घाटन भारत के मध्य न्यायाधिपति श्री हीरापाल कुमारन द्वारा किया गया।

और उसमें अनेक न्यायाधीशों, प्रोफेसरों और प्रमुख वकीलों ने उस अवसर पर भाषण दिए। इस कान्फ्रेंस के फलस्वरूप 'समस्याओं और सिफारिशों' का एक अंतिम प्रारूप भारत के विधि आयोग को 5.11.2002 को भेजा गया। इस रिपोर्ट में विधि शिक्षा के क्षेत्र के सामने आने वाली समस्याओं का चित्रण है। इसमें विधि शिक्षा के शैक्षिक उद्देश्यों; संस्थागत संरचना; पाठ्यक्रम; मूल्याकांन/परीक्षा; अच्छे शिक्षक मिलने में कठिनाई; तकनीक और सम्बद्धता; कक्षा-कक्ष; अध्यापन में उपयोगी वस्तुएं तथा मूल संरचना; विद्यार्थी वर्ग; नियोजन के अवसर और नियुक्तियां; वकालत की परीक्षाएं/प्रशिक्षिता; नियंत्रण; सहयोजन और व्यवस्था की गुणवत्ता; तथा वित्त पोषण के बारे में उल्लेख है। उक्त 5.11.2002 की रिपोर्ट, जो कि नेशनल लॉ स्कूल ने भेजी थी, वर्तमान रिपोर्ट तैयार करते समय ध्यान में रखी गई है।

विश्वविद्यालयों संगमो तथा अन्य के प्रत्युत्तरः

1.8 विश्वविद्यालयों के संगम ने भी अपने विचार भेजे हैं। अन्य व्यक्तियों, विधिज्ञ परिषदों या वकील संघों ने भी बड़ी संखा में व्यपदेश भेजे हैं।

आयोग के विचारः

1.9 कार्यपत्र के पश्चात् आयोग को विभिन्न निकायों द्वारा व्यक्त किए गए विभिन्न विचारों का लाभ प्राप्त हुआ है। आयोग ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पाठ्यक्रम विकास समिति की रिपोर्ट 1989-90 तथा 2001 अधीनस्थ विधि पर संसदीय समिति की रिपोर्ट (1993-94) का अध्ययन किया है और ऑल इण्डिया टीचर्स एसोसिएशन्स ऑफ यूनिवर्सिटी के 1999 के विचारों पर तथा विधि शिक्षा संस्थानों के अध्यक्षों की प्रथम राष्ट्रीय परामर्शी कान्फरेंस के विचारों पर भी, जिसका आयोजन नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इण्डिया यूनिवर्सिटी, बंगलौर ने किया था, ध्यान दिया है।

1.10 आयोग को यह प्रतीत होता है कि उक्त विचारों की पृष्ठभूमि में, विशेषरूप से एक ओर भारतीय विधिज्ञ परिषद् के विचार और दूसरी ओर संकाय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विचारों के प्रकाश में, भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की संवैधानिक और कानूनी भूमिका का गहन अध्ययन आवश्यक है। इनकी भूमिकाओं को संवैधानिक उपबंधों में तथा उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में पहले ही परिभाषित किया जा चुका है। जैसाकि हम आगे स्पष्ट करेंगे, भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग/संकाय की अधिकारिता अथवा कार्यकरण से संबंधित उपबंधों में अन्तः सामंजस्य स्थापित करना होगा।

1.11 भारत के विधि आयोग ने, जिसके अध्यक्ष तत्समय भारतीय वकील संघ के नेता श्री एम्‌सी० सीतलबाड़ थे, भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा संकाय की परस्पर भूमिकाओं को अपनी 14वीं रिपोर्ट (1958) में स्पष्टरूप से संक्षेप में प्रस्तुत किया है। हम इस रिपोर्ट की भी चर्चा करेंगे। संवैधानिक और कानूनी स्थिति पर न्यायाधिपति ए० एम० अहमदी की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की समिति की 1994 की रिपोर्ट में भी विचार किया गया था।

1.12 आयोग इस रिपोर्ट में 'विदेशी कानूनी सलाहकारों के प्रवेश तथा विधि व्यवसाय के उदारीकरण' से संबंधित समस्याओं पर तथा विधिज्ञ परिषदों के गठन और निर्बाचनों या अनुशासनात्मक समितियों की सदस्यता को प्रश्न पर विचार नहीं करना चाहता। आयोग उन विभिन्न समस्याओं पर विचार करना चाहता है जो उतनी ही महत्वपूर्ण हैं और जिनके परिणामस्वरूप विधि शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने में बहुत लाभ होगा। ये विषय हैं – विधि शिक्षा के स्तर को बनाए रखने के संबंध में, जैसाकि भारत के संविधान की अनुसूची VII में संवैधानिक उपबंधों से प्रकट होता है, भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग की पारस्परिक भूमिकाएँ; विधि शिक्षा समिति की सदस्यता; विश्वविद्यालयों से भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा परामर्श करने की प्रभावशील प्रक्रिया तैयार करना; विधि शिक्षा के विभिन्न पक्षों के अध्ययन की भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा आवश्यकता; अनुजाएं और निरीक्षण को मजबूत बनाना; समस्या पद्धतियों का शिक्षण; एडीआर प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण; परीक्षा पद्धति को बेहतर बनाना तथा शिक्षण की गुणवत्ता में सधार और उसे अद्यतन बनाना: प्रशिक्षित या प्रशिक्षण: विधिज्ञ परीक्षा आदि।

जैसे कि दिल्ली विश्वविद्यालय अधिनियम, 1922। न्यायालय ने, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम पर विचार करते हुए निम्नलिखित उल्लेख किया है:

“ये बहुत व्यापक शक्तियाँ हैं। हमारे मत में, ऐसी शक्तियों में उन व्यक्तियों से, जिनके पास विश्वविद्यालय और महाविद्यालयों में लेक्चरर का पद धारण करने के लिए अपेक्षित शैक्षिक अहताएं हैं, लिखित परीक्षा में स्वयं को प्रस्तुत करने की शक्ति भी समाहित है.....।”

“इन शक्तियों में विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार के लिए आवश्यक उपायों की सिफारिश करने की तथा ऐसी सिफारिशों को क्रियान्वित करने के प्रयोजन के लिए की जाने वाली कार्यबाही के संबंध में परामर्श देने की शक्ति भी सम्मिलित है। (खंड घ)। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ऐसे अन्य कृत्य करने की शक्ति भी प्रदान की गई है जो विहित किए जाएं अथवा जिन्हें भारत में उच्चतर शिक्षा के उद्देश्य को अप्रसर करने के लिए आवश्यक समझा जाए अथवा जो ऐसे कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक या अनुषंगी हों। (खंड ङ)। ये दोनों खंड भी अत्यन्त व्यापक हैं और उनसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उक्त विनियम बनाने की शक्ति प्राप्त होती है।”

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा बनाए गए विनियम संसद् द्वारा बनाए गए किसी अन्य कानून पर अभिभावी होंगे। प्रीती श्रीवास्तव बनाम मंध्य प्रदेश राज्य 1999 (7) एस सी सी 120, में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिया गया एक निर्णय, जो चिकित्सा शिक्षा के संबंध में अत्यन्त सुर्योगत है क्योंकि न्यायालय ने उसमें सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 66 के अंतर्गत संसद् द्वारा पारित एक अन्य कानून के संबंध में, जो कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के समान है, अर्थात् भारतीय चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 के उपबंधों पर, विचार किया है जो विनिर्दिष्ट रूप से चिकित्सा शिक्षा के “मानकों” के संबंध में है। इस अधिनियम की भूमिका में (विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की भूमिका के समान) कहा गया है कि इस अधिनियम का उद्देश्य, अन्य बारों के साथ-साथ, स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा के मानकों को विहित करने के लिए उपबंध करना है। चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की धारा 20, स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा से संबंधित विषयों में चिकित्सा परिषद् की सहायता करने के लिए स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा समिति के गठन से संबंधित है और उसमें कहा गया है कि यदि चिकित्सा परिषद् तथा स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा समिति के बीच कोई विवाद उठना है तो चिकित्सा परिषद् उसे “विनिश्चय के लिए, अपनी टिप्पणियों के साथ, केन्द्रीय सरकार को भेजेगी।” यदि चिकित्सा परिषद् स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा समिति की शिकायतों के आधार पर कोई विनियम बनाती है तो वे राज्य सरकारों पर बाध्यकर होंगे। विनियमों को केवल सिफारिश नहीं माना जा सकता। सूची I की प्रविष्टि 66 के अंतर्गत शिक्षा के मानकों में शिक्षण कर्मचारिवन्द की सुधार्यता, विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच अनुपात, संस्था में प्रविष्टि विद्यार्थियों की सुधार्यता, उचित पाठ्यक्रम, उपस्कर और लैब सुविधाएं, महाविद्यालय के लिए पर्याप्त स्थान, शिक्षा के मानक और वह रीति भी आती है जिसके अनुसार प्रश्नपत्र तैयार किए जाएंगे और उनकी जांच की जाएगी।

2.3 उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त नियर्णयों से सूची I की प्रविष्टि 66 के अंतर्गत बनाए गए किसी कानून का विस्तार और प्रभाव, जहां तक उनका संबंध ‘शिक्षा के मानकों’ से है, पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है। ऐसा कानून, चाहे वह विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 हो या चिकित्सा शिक्षा परिषद् अधिनियम, 1956 हो (जहां तक कि उत्तरवर्ती विधि में स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा के मानकों को विहित करने का प्राधिकार है), तथा उक्त प्रविष्टि के अंतर्गत “मानकों को अधिकारित प्रयोजन के लिए बनाए गए कानूनों का संबंध है, जिनके अंतर्गत शिक्षण, पाठ्यक्रम, परीक्षा, चाहे वह प्रवेश के स्तर पर हो अथवा उसके पश्चात्, आदि विषय आते हैं। ऐसे कानून संसद् द्वारा बनाए गए किसी अन्य कानून पर अभिभावी होंगे।

2.4 सूची III की प्रविष्टि 25 के अंतर्गत अथवा सूची II की पूर्व प्रविष्टि 1 के अंतर्गत, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विश्वविद्यालय अधिनियम भी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 के उपबंधों के अधीन होंगे।

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 तथा सूची I की प्रविष्टि 77-78

2.5 संसद् ने भारत के संविधान की सातवीं अधिसूची की सूची I की प्रविष्टि 77-78 के अंतर्गत अपनी शक्तियों के आधार पर अधिवक्ता अधिनियम, 1961 पारित किया है। यहां विधायन का विषय “उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय में व्यवसाय” है। (ओ० एन० मोहिन्द्रो बनाम बार काउंसिल, ए आई आर

1968 एस सी सी 888; उत्तर प्रदेश बार कार्डिसिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए आई आर 1973 एस 231 देखिए)। वास्तव में, पश्चात् वर्ती मामले में, अर्थात्, उप्रो बार कार्डिसिल के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने विनिर्दिष्ट रूप से यह निर्णय दिया है (पृष्ठ 238) कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 मूलतः सूची I की प्रविष्टि 77-78 में निर्दिष्ट विषय से ही संबंधित है जो कि निम्नलिखित रूप में है:

“प्रविष्टि 77: उच्चतम न्यायालय का गठन, संगठन, अधिकारिता और शक्तियां (जिनके अंतर्गत उस न्यायालय का अवमान भी है) और उसमें ली जाने वाली फीस; उच्चतम न्यायालय के समक्ष विधि-व्यवसाय करने के हकदार व्यक्ति”।

“प्रविष्टि 78: उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और सेवकों के बारे में उपबंधों को छोड़कर, उच्च न्यायालय का गठन व संगठन (जिसके अंतर्गत दीर्घावकाश है); उच्च न्यायालयों के समक्ष विधि-व्यवसाय करने के हकदार व्यक्ति”।

इस प्रकार, अधिवक्ता अधिनियम, 1961 उन शर्तों के बारे में है जिनका समाधान किसी व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के समक्ष विधि-व्यवसाय की अनुज्ञा प्राप्त करने से पूर्व करना होगा किन्तु इस अधिनियम की भूमिका में अथवा उद्देश्यों और कारणों के कथन में ‘विधि शिक्षा के मानक’ का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं है जैसाकि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 अथवा चिकित्सा परिषद् अधिनियम, 1956 की भूमिका और उद्देश्यों तथा कारणों के कथन में है। अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7(1) (ज) में ही इस विषय का उल्लेख है।

2.6 आयोग के मत में, जहां तक ऐसे विश्वविद्यालयों में विधि पाठ्यक्रम का संबंध है जो कठिपय विधि विषय की उपाधियां (डिग्रियां) या डिप्लोमा प्रदान करते हैं (और जहां विद्यार्थियों को यह अधिसूचित कर दिया जाता है कि उन डिग्रियों या डिप्लोमाओं के आधार पर वे विधि-व्यवसाय करने के हकदार नहीं हो सकेंगे) और ऐसे पाठ्यक्रम व्यक्ति को विधि व्यवसाय करने के लिए समर्थ नहीं बनाते हैं वहां भारतीय विधिज्ञ परिषद् कोई आज्ञापक शर्त अधिरेपित नहीं कर सकती है। ऐसे मामलों में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ही विशेषाधिकार प्राप्त है। तथापि, ऐसे पाठ्यक्रमों की बाबत भी विश्वविद्यालयों को, ऐसे मानक नियत करने के विषय में, यद्यपि इसका विशेषाधिकार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्राप्त है, बहुत लाभ प्राप्त होगा यदि वे भारतीय विधिज्ञ परिषद् से परामर्श करें। दूसरे शब्दों में, ऐसे पाठ्यक्रमों की बाबत, जो वृत्तिक जीवन-यापन का आधार नहीं हो सकते विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और विश्वविद्यालय अपनी मर्जी से भारतीय विधिज्ञ परिषद् के साथ परामर्श कर सकते हैं यद्यपि यह आज्ञापक नहीं है।

संविधान की सातवीं अनुसूची की किसी एक सूची में प्रविष्टियों की व्यापकता किसी अनुसूची अथवा उसी सूची में प्रविष्टियों से सीमित नहीं होगी:

2.7 जहां भी संविधान में ऐसे उपबंध हैं जिनमें विधायी शक्तियों का संघ और राज्य विधान मण्डलों के बीच बंटवारा किया गया है वहां यह परीक्षा करना आवश्यक है कि संघ या राज्य विधानमण्डल को किसी संबंधित विषय पर किस विस्तार तक विधि बनाने का मूलतः हक है। यह कार्य उस विधि की मूल वस्तु की परीक्षा करने से पूरा हो सकता है जो विधानमण्डल द्वारा किन्हीं विधायी प्रविष्टियों के संदर्भ में तैयार की जाती है। इस विषय में निर्वचन के कुछ सिद्धांत लागू होते हैं।

2.8 सर्वप्रथम, प्रत्येक सूची की प्रत्येक प्रविष्टि को, बिना किसी सीमा के, अधिक से अधिक व्यापकता प्रदान करनी होगी। किसी अन्य विधानमण्डल को विधायी क्षेत्र में आनुषंगिक प्रवेश करने की सीमित अनुज्ञा है, अर्थात्, यदि वह किसी दूसरे प्रत्यक्ष उपबंध के साथ प्रत्यक्षतः विधेयी नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि संघीय विधानमण्डल अपने क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले विषयों में से किसी पर विधि तैयार करता है तो वह आक्रमिक रूप से किसी राज्य विधानमण्डल के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। और इसका विपरीत भी संभव है यदि किसी अन्य कानून के प्रत्यक्ष उपबंधों के साथ उससे कोई सीधा संघर्ष उत्पन्न नहीं होता। जहां तक विधि का मूल अंश ऐसे विषय से संबंधित है जो उस विधानमण्डल के क्षेत्र में आता है, और जो संविधान द्वारा उसे आबंटित किया गया है, वहां तक अन्य विधानमण्डल को उस क्षेत्र में सीमित मात्रा तक आनुषंगिक प्रवेश करने की आनुशंगिक प्रवेश करने की अनुमति है और उसे अवैध करार नहीं दिया जा सकता।

2.9 तथापि, वर्तमान संदर्भ में, संघीय विधानमण्डल और राज्य विधानमण्डल से संबंधित प्रविष्टियों के अंतर्गत बनाई गई विधियों के बीच विरोध उत्पन्न नहीं होता है यहां समस्या केवल एक ही विधानमण्डल द्वारा तैयार की गई दी विधियों के बीच पैदा होती है, उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम और अधिवक्ता अधिनियम, ब्योकि दोनों को संसद् ने तैयार किया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 और अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के मामले में हमें सूची I के अंतर्गत अधिनियमित दो विधियों के बारे में चिंता है यद्यपि दोनों अधिनियम विभिन्न प्रविष्टियों के अंतर्गत बनाई गये हैं।

2.10 यदि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 स्पष्ट रूप से शिक्षा के मानकों के विषय में आशयित है तो क्या अधिवक्ता अधिनियम, 1961 जो ‘विधि व्यवसाय करने का अधिकार’ विषय के लिए आशयित है, ऐसी विधि माना जा सकता है जिसकी मूल विषय वस्तु का संबंध ‘शिक्षा के मानक’ से है। असल बात यह है कि जैसा ऊपर कहा गया है, दोनों विधियों सूची I की विभिन्न प्रविष्टियों के अंतर्गत बनाई गई हैं ऐसी दशा में निर्वचन का कौन सा सिद्धांत लागू होगा।

2.11 इण्डिया सीमेन्ट बनाम तमिलनाडु राज्य, 1990 (1) एस सी सी 12, में यह अधिकथित किया गया था कि पूर्ववर्ती पैरा में उल्लिखित संवैधानिक सिद्धांत, जो कि संघ विधानमण्डल और राज्य विधानमण्डल द्वारा बनाई गई विधियों से संबंधित है, एक ही विधान मण्डल द्वारा एक ही सूची की विभिन्न प्रविष्टियों के अंतर्गत बनाई गई विधि की दशा में भी समान रूप से लागू होगा। उपरोक्त मामले में न्यायाधिपति श्री सव्यसाची मुखर्जी ने (जब वह न्यायाधिपति थे) निम्नलिखित कथन किया है (पृष्ठ 23, पैरा 19 देखिए):

“किसी प्रविष्टि का निर्वचन करते समय यह युक्तियुक्त नहीं होगा कि उस प्रविष्टि का उसी सूची के अंतर्गत किसी अन्य प्रविष्टि के साथ तुलना करते समय या विरोध दर्शाते समय कोई सीमा नियत की जाए।”

2.12 इण्डिया सीमेन्ट में उल्लिखित इसी सिद्धांत को न्यायाधिपति सव्यसाची मुखर्जी ने सिन्येटिक्स एण्ड केमिकल्स लिमिटेड बनाम ऊप्र० राज्य, 1990 (1) एस सी सी 109 में, पृष्ठ 151 (पैरा 67) में दोहराया था।

2.13 दूसरे शब्दों में, सूची I में ‘शिक्षा के मानक’ से संबंधित प्रविष्टि 66 के अंतर्गत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम के उपबंधों को और अधिवक्ता अधिनियम के उपबंधों को उत्तरा व्यापक स्वरूप दिया जाना चाहिए जितना संभव हो। विश्वविद्यालय अनुदान अधिनियम सूची I की प्रविष्टि 66 के अंतर्गत परित किया गया था। उसका संबंध शिक्षा के मानक से है जबकि अधिवक्ता अधिनियम सूची I की प्रविष्टि 77-78 के अंतर्गत आता है। निःसंदेह ये प्रविष्टियों ‘विधि शिक्षा के मानक’ से संबंधित नहीं हैं किन्तु इसी अधिनियम में आगे ‘विधि व्यवसाय करने के अधिकार’ के विषय में उपबंध हैं।

भाष्विष्य० तथा विष्विष्य० की शक्तियों के बीच समन्वय

2.14 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि विधि शिक्षा देने के मामले में, जो कि वृत्ति के लिए आवश्यक है, भाष्विष्य० को विश्वविद्यालय पर निर्भर रहना होगा। विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को विधि व्यवसाय करने के लिए तैयार करते हैं सिवाए वहां जहां जिथे पाठ्यक्रम उनके लिए हैं जो विधि व्यवसाय नहीं कर सकते। इससे समन्वयपूर्ण अर्थ निकालने के सिद्धांत को लागू करने का प्रश्न पैदा हो जाता है। अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7(1) (ज) भारतीय विधिज्ञ परिषद् को ‘विधि शिक्षा के मानक’ अधिकथित करने के लिए समर्थ बनाती है। धारा 7(1) (ज) को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 का विरोधी नहीं माना जा सकता। कारण यह है कि भाष्विष्य० को धारा 7(1) (ज) के अंतर्गत विश्वविद्यालय से परामर्श करना आवश्यक है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ‘शिक्षा के मानक’ अधिकथित कर सकता है और भाष्विष्य० विधि स्नातक के विधि व्यवसाय में प्रवेश के लिए पात्रता की शर्त अधिकथित कर सकती है। यदि कोई विद्यार्थी विधि व्यवसाय में प्रवेश करने की इच्छा से किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त करता है किन्तु उसे विधि ऐसी रीति से पढ़ाई जाती है जो भाष्विष्य० को स्वीकार नहीं है तो विश्व महाविद्यालय विद्यार्थियों के भविष्य के लिए शिक्षा के प्रयोजन को पूरा नहीं कर पाएंगे और वास्तव में उनमें बहुत कम लोग प्रवेश ले लेंगे। अतः व्यावहारिक दृष्टि से, विधि महाविद्यालय को भाष्विष्य० द्वारा निश्चित की गई शर्तों के अनुरूप कार्य करना होगा यदि वे वकील संघों के लिए वकीलों की आपूर्ति करना चाहते हैं। साथ ही, विश्वविद्यालय तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, दोनों, का संबंध विधि शिक्षा के मानकों से है चाहे वह विधि व्यवसायों के लिए हो अथवा अन्य

प्रयोजन के लिए। विधि शिक्षा के मानकों के विषय में विश्वविद्यालय विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति उत्तरदायी हैं और यहीं बात उनसे संलग्न महाविद्यालयों को लागू होती है। दूसरे शब्दों में, विधि शिक्षा का विषय दो निकायों, अर्थात् विंअ०आ० और भाविंप० की परिधि में आता है। यदि संक्षेप में कहें तो सामंजस्य स्थापित करने के लिए अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7 (1) (ज) में यह अपेक्षा की गई है कि भाविंप० विश्वविद्यालय के साथ परामर्श करे। दोनों भागीदारों का उद्देश्य एक ही है।

2.15 तथापि, इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि विश्वविद्यालय और संलग्न महाविद्यालय विभिन्न स्तरों पर हजारों विधि अध्यापकों को नियोजित करते हैं। इन अध्यापकों में से बहुत बड़ी संख्या उनकी है जो उच्च अहता प्राप्त हैं। उनमें से अधिकांश के यास भारत की डाकटरेट या स्नातकोत्तर डिग्रियां हैं और उनमें से अनेक के पास विश्व के विख्यात विश्वविद्यालयों की, जैसे कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, येल, हारवार्ड और स्टानफोर्ड आदि की डाकटरेट अथवा अन्य डिग्रियां हैं। इनमें से अनेक अध्यापक 10 से 20 वर्ष अथवा उससे अधिक समय से विधि पढ़ा रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन विधि अध्यापकों के साथ, जिहें अंततः शिक्षण का काम करना है, परामर्श किया जाए या उस समय अपनी कठिनाइयां और समस्याओं को व्यक्त करने का अवसर दिया जाए जब कोई नया पाठ्यक्रम लागू किया जाता है। परामर्श करने की बाध्यता पारस्परिक है और इकतरफा नहीं है। इस बात की बहुत आवश्यकता है कि विश्वविद्यालय भाविंप० से परामर्श करे और प्रकार से उक्त परिषद् विश्वविद्यालय के साथ परामर्श करे। अधिवक्ता अधिनियम की धारा 7(1) (ज) की व्यवस्था में, जो विश्वविद्यालय के साथ परामर्श की अपेक्षा करती है, एक अच्छा संतुलन स्थापित करना होगा। परामर्श का अर्थ है प्रभावपूर्ण परामर्श।

2.16 इस संबंध में हम प्रो० गुरदीप सिंह द्वारा “लीगल एज्यूकेशन इन इण्डिया इन फर्स्ट सेन्चुरी : प्रोबलम्स एण्ड परसपेरिट्व” के वाल्यूम में, दिल्ली में हुई अखिल भारतीय सेमीनार के पश्चात् जिसमें समस्त भारत के संकाय ने भाग लिया था, जनवरी 1999 में प्रकाशित लेख “रिवेम्पिंग प्रोफेशनल लीगल एज्यूकेशन : सम आवजरवेशन ऑन द एल एल बी करीक्यूलम रिवाइज्ड बाई दि बार कार्डसिल ऑफ इण्डिया” का उल्लेख करना चाहते हैं। यह वाल्यूम दिल्ली विश्वविद्यालय के विधि संकाय ने प्रकाशित किया है। इस लेख में भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा प्रस्तुत नये पाठ्यक्रम से उत्पन्न अनेकों समस्याओं का उल्लेख किया गया है जिनका बहुत आसान समाधान निकल सकता था यदि संकाय के साथ पहले ही प्रभावपूर्ण परामर्श कर लिया जाता।

यहां हम एक अन्य पहलू का उल्लेख भी करना चाहते हैं। भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने 21.10.1997 के अपने पत्र उल इ (सरक्यूलर नं० 4/1997) द्वारा, एलएलबी० पाठ्यक्रमों के विषयों की तथा प्रस्तुत प्रश्नपत्रों को विषय वस्तु की चर्चा करने के पश्चात् उनके ब्यौरे विश्वविद्यालय द्वारा तैयार करने के लिए छोड़ दिए थे। उक्त परिषद् ने उस पत्र में लिखा है कि—

“प्रत्येक प्रश्नपत्र की विषय वस्तु और संख्या नियत करने का काम विश्वविद्यालय के शैक्षिक निकायों के विवेक पर छोड़ दिया गया है। विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा तैयार की गई पाठ्यक्रम विकास समिति रिपोर्ट (1989) का, विभिन्न कोर्सों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करते समय उपयोग कर सकते हैं।”

(विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की पाठ्यक्रम विकास समिति की 2001 की रिपोर्ट के पृष्ठ 1 और 2 से उद्धृत)

2.17 वास्तव में, विंअ०आ० की पाठ्यक्रम विकास समिति की 2001 की रिपोर्ट में भाविंप० और संकाय के बीच परामर्श की प्रक्रिया में सामंजस्य की बात को स्वीकार किया गया है किन्तु हमारी राय में इसे और सशक्त बनाना होगा। 2001 की उक्त रिपोर्ट में अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1) (ज) तथा विंअ०आ० अधिनियम, 1956 की धारा 12 का उल्लेख करने के पश्चात् (पृष्ठ 2 पर) कहा गया है कि “विधि शिक्षा के क्षेत्र में, इस प्रकार से, भाविंप० और विंअ०आ० के दोहरे उत्तरदायित्व का संशय विद्यमान था। पाठ्यक्रम विकास समिति इस कठिनाई से अवगत थी और उसने दोहरे उत्तरदायित्व से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिए कुछ उपायों का सुझाव भी दिया था तथा और अधिक विचार विमर्श की अपेक्षा की थी जो विंअ०आ० तथा भाविंप० के बीच सूचना के आदान-प्रदान की भागीदारी के रूप में और परामर्श के रूप में पूरी हो सकती थी। यह ध्यान देने चाहिए है कि भाविंप० ने उस समय अपने द्वार खुले रखे जब 1995 में सुधार प्रस्तुत किए गए। उसने एलएलबी० के पाठ्यक्रम में सुधार प्रस्तावित करते समय विश्वविद्यालयों तथा विंअ०आ० के विधि पैनल के साथ परामर्श किया।”

रिपोर्ट में (पृष्ठ 2 पर) निम्नलिखित बात कही गई है:

“यद्यपि इसे गहरे आदान-प्रदान का नाम नहीं दिया जा सकता किन्तु भाविंप० तथा विंअ०आ० के बीच विधि शिक्षा में सुधारों के संबंध में समान प्रयासों के बीच जो दरारे थीं उन्हें भरा जा रहा था। यह महत्वपूर्ण है कि भाविंप० ने पाठ्यक्रम की तैयारी में पाठ्यक्रम विकास समिति की रिपोर्ट का अनुसरण करने की बात कहकर यह संकल्प किया कि वह उक्त समिति की सिफारिशों को कुछ पाठ्यक्रमों में स्वीकार करेगी। पर्यावरण विधि, मानव अधिकार विधि और उपभोक्ता सुरक्षा विधि को अनिवार्य विषय बनाया गया। विधि और निर्धनता, तुलनात्मक विधि, बीमा विधि, विधि तथा औषधि, महिलाएं तथा विधि और ज्ञान सम्पत्ति (इन्टलेक्वयूअल प्राप्टी) को वैकल्पिक विषय बनाया गया। प्रशासनिक विधि और श्रम विधि को अनिवार्य पाठ्यक्रमों का दर्जा देकर उन्नत किया गया।”

विंअ०आ० की पाठ्यक्रम विकास समिति की 2001 की रिपोर्ट में इस प्रकार से यह स्वीकार किया गया है कि कुछ परामर्श तो हुआ किन्तु यह भी कहा गया है कि भाविंप० तथा विंअ०आ० के बीच ‘निकटर आदान-प्रदान’ आवश्यक है।

2.18 विधि आयोग, उक्त तथ्यों के प्रकाश में, ऐसी प्रक्रिया की सिफारिश करना चाहता है जिससे भाविंप० तथा विंअ०आ० के बीच ‘गहरा आदान-प्रदान’ सुनिश्चित हो जाए।

2.19 यद्यपि दोनों निकायों के बीच बाध्यताओं की प्रकृति पारस्परिक है, तथापि, उनमें से कोई भी उन व्यावहारिक कठिनाइयों की उपेक्षा नहीं कर सकता जो धारा 7 (1) (ज) के वर्तमान स्वरूप के कारण हैं और जो भाविंप० से यह अपेक्षा करती है कि वह सभी विश्वविद्यालय से परामर्श करे जिन विश्वविद्यालयों में विधि, प्रत्यक्षतः अथवा संलग्न विद्यालयों के माध्यम से, पढ़ाई जाती है, उनकी संख्या बहुत अधिक है और इस कारण से भाविंप० के लिए उनमें से प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ परामर्श करना उस समय व्यावहारिक रूप से असंभव हो जाता है जब उक्त परिषद् को विधि शिक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने होते हैं। यदि उसे प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ परामर्श करना पड़े तो यह एक दौर्घटकालिक प्रक्रिया होगी। भाविंप० सद्भाविक रूप से यह अनुभव करती है कि धारा 7 (1) (ज) की अपेक्षा पूरी हो जाती है यदि विश्वविद्यालय में काम कर रहे कुछ प्रोफेसरों को पाठ्यक्रम के पुनरीक्षण के विषय पर आहूत किन्हीं सेमीनारों में बोलने के लिए आमंत्रित कर लिया जाता है। हमारी राय में ऐसी प्रक्रिया में सुधार करना होगा क्योंकि किसी कानूनेस में आमंत्रित एक या दो प्रोफेसर सभी विश्वविद्यालयों के दृष्टिकोणों का प्रतिविधित्व नहीं कर सकते।

2.20 क्योंकि भारतीय विधिज्ञ परिषद् सभी विश्वविद्यालयों से परामर्श नहीं कर सकती अतः 7 (1) (ज) को उपबंधों में संशोधन करके यह विहित करना होगा कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् को किसी ऐसे निकाय से परामर्श करना चाहिए जो सभी विश्वविद्यालयों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिनिधित्व करता हो।

2.21 इस व्यावहारिक समस्या को सुलझाने की दृष्टि से तथा परामर्श को सहज और अर्थपूर्ण बनाने के लिए आयोग को यह आवश्यक प्रतीत होता है कि परामर्श की एक सरल और प्रभावशील प्रक्रिया तैयार की जाए। भाविंप० तथा विश्वविद्यालय के बीच परामर्श की प्रक्रिया सहज तथा प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में भाविंप० तथा विश्वविद्यालय को सहयोग करना होगा और, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, एक समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बराबरी के रूप में काम करना होगा। हम इस विषय में चर्चा अध्याय IV में करेंगे और उसके पूर्व अध्याय III में विधि शिक्षा समिति की सदस्यता के प्रश्न पर विचार करेंगे। अध्याय IV में जिन पहलुओं की चर्चा करनी है वे उन सिफारिशों पर निर्भर हैं जो अध्याय III में की जा रही हैं।

2.22 हम तदनुसार निम्नलिखित सिफारिश करते हैं:—

“क्योंकि भारतीय विधिज्ञ परिषद् से धारा 7 (1) (ज) में कथित के अनुसार सभी विश्वविद्यालयों से परामर्श करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती, अतः धारा 7 (1) (ज) में यह विहित करते हुए संशोधन करना होगा कि भाविंप० को ऐसे निकाय के साथ परामर्श करना चाहिए जो सभी विश्वविद्यालयों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिनिधित्व करता हो तथा ऐसे निकाय का गठन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया जाना चाहिए। इसके लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया जाना चाहिए।

इसमें आगे कहा गया है:-

“विधि शिक्षकों में व्यापक असंतोष है कि उनके साथ इनमें से किसी भी प्राधिकारी द्वारा इस समय पर्याप्त परामर्श नहीं किया जाता है।”

“तथापि, यह सुझाव भी दिया गया है कि एक अखिल भारतीय विधि शिक्षा परिषद् तकनीकी शिक्षा के लिए बनाइ गई अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के अनुरूप बनाइ जाए तथा भा.वि.प. केवल विधि व्यवसाय में प्रवेश को विनियमित करने के लिए और विधि शिक्षा के लिए नहीं अपितु विधि व्यवसाय के मानकों को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी हो।”

किन्तु हम यह महसूस करते हैं कि यदि ‘विधि शिक्षा’ को भा.वि.प. की परिधि से पूर्णरूप से अलग रखा जाता है तो वह विधि शिक्षा का ऐसा सुनिश्चित पादयन्त्र विहित करने में समर्थ नहीं हो सकेगी जो विधियों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। विधि आयोग को प्रतीत होता है कि इस समय भा.वि.प. को विधि शिक्षा से सर्वथा पृथक् करने के सुझाव के मार्ग में व्यावहारिक कठिनाइयां हैं। विधियों तथा न्यायपालिका के साथ परामर्श किए बिना ऐसा निर्णय नहीं लिया जा सकता। हम निम्नलिखित कारणों से इस अतिरिक्त सुझाव पर विचार नहीं करना चाहते।

3.7 यह आलोचना कि अहमदी समिति ने विधि शिक्षा समिति में संकाय के केवल एक सदस्य को रखने की सिफारिश की थी हमारे मत में न्यायोचित है। किन्तु एक दूसरा मत यह है कि विधिज्ञ परिषद् और न्यायाधीशों को विधि शिक्षा से कोई संबंध नहीं होना चाहिए। किन्तु इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सूची I की प्रविष्टि 77-78 में विधायन की विषय वस्तु ‘न्यायालयों में विधि व्यवसाय’ है तथा अधिवक्ता अधिनियम, 1961 इसी प्रयोजन के लिए बनाया गया कानून हैं जैसा कि अध्याय II में संकेत दिया गया था, यद्यपि वह सामान्य रूप में था। ‘विधि शिक्षा के मानक’ के विषय में वि.अ.आ. अथवा विश्वविद्यालयों को प्राथमिकता दी जा सकती है। किन्तु उन विद्यार्थियों के लिए जिन्हें न्यायालयों में विधि व्यवसाय करना होगा, विधि शिक्षा के मानकों के संबंध में प्राथमिकता विधिज्ञ परिषद् तथा न्यायपालिका को प्राप्त है। यही मत सीतलवाड़ समिति की 14वीं रिपोर्ट में व्यक्त किया गया था किन्तु साथ ही यह बात भी है कि इसका यह अर्थ नहीं है कि मानक नियम करने में विधि अध्यापकों को कोई स्थान नहीं है। हमारी दृष्टि में, भा.वि.प. को विश्वविद्यालयों के साथ अथवा, जैसाकि प्रस्तावित है, विधि संकाय के किसी निकाय के साथ परामर्श करना चाहिए जो समस्त देश के विधि शिक्षकों के समुदाय की प्रतिनिधि हो और वि.अ.आ. द्वारा नामनिर्देशित की जाए। हमारा मत है कि इस अध्याय में तथा अगले अध्याय (अर्थात् अध्याय V) में दर्शाया गया प्रस्ताव विधियों, न्यायपालिका और विधि शिक्षकों की भूमिकाओं में संतुलन स्थापित करेगा तथा जैसे ही विधि शिक्षा समिति में अध्यापकों की संख्या में वृद्धि कर दी जाएगी कि किसी शिक्षायत का कोई अवसर नहीं रहेगा।

3.8 हम यहां यह उल्लेख करना चाहते हैं कि अगले अध्याय में, अर्थात् अध्याय IV) में, हम वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति के गठन की बाबत सिफारिश कर रहे हैं जो कि उन सभी विश्वविद्यालयों का एक प्रतिनिधि निकाय होगी और जिसके साथ भा.वि.प. को भारा 7 (1) (ज) के प्रयोजनों के लिए परामर्श करना होगा।

3.9 इसके अतिरिक्त, हमने भा.वि.प. तथा संकाय द्वारा कार्यपत्र के संबंध में दिए गए प्रत्युत्तरों के प्रकाश में, विधि शिक्षा समिति की संरचना के प्रश्न पर पुनः विचार किया है। हम इस निश्चर्ष पर पुरुंचे हैं कि भा.वि.प. की यह शिक्षायत कि उसे केवल एक तिहाई हिस्सा दिया गया है सही है और स्वीकार करने योग्य है। 10 में से 5 के मूल अनुपात को चालू रखा जाना चाहिए। अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि, कार्यपत्र में जैसा प्रस्ताव रखा गया था, समिति की सदस्यता 15 करने के विचार को छोड़ दिया जाना चाहिए और 10 सदस्यों की समिति, जैसी कि इस समय है, रही चाहिए और यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि आधे, अर्थात् 5 सदस्य, विधिज्ञ पार्षद होंगे। इस समय शेष पांच व्यक्ति विधिज्ञ पार्षदों से भिन्न व्यक्ति हैं। हम शेष पांच सदस्यों के गठन के बारे में भी कुछ परिवर्तन करने का प्रस्ताव कर रहे हैं और इसमें भा.वि.प. को कोई शिक्षायत नहीं हो सकती। शेष पांच सदस्यों में से एक सदस्य उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश रहेगा तथा एक दूसरा सदस्य किसी उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होगा जो भारत के मुख्य न्यायाधीश परामर्शद्वारा नाम निर्दिष्ट होगा। (ऐसा प्रतीत होता है कि भा.वि.प. वर्तमान में भी इसी प्रक्रिया का अनुसरण कर ही है।) विधि

अध्याय III

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की सदस्यता

3.0 हम सर्वप्रथम भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की सदस्यता के प्रश्न पर विचार करेंगे। श्री एम्सी० सीतलवाड़ की अध्यक्षता में विधि आयोग ने अपनी 14वीं रिपोर्ट (1958) (देखिए पैरा 53, पृष्ठ 546) अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति, 1953 की इस सिफारिश का उल्लेख किया है कि ‘विधि शिक्षा समिति’ में 12 सदस्य होने चाहिए जिनमें से दो न्यायाधीश, पांच अखिल भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा चुने गए व्यक्ति और पांच ऐसे अन्य व्यक्ति होने चाहिए जिनका चयन और नामांकन उपरोक्त सात सदस्यों द्वारा विश्वविद्यालयों में से किया जाए।

3.1 किन्तु अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 10 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) में उक्त समिति के सदस्यों की संख्या 10 विहित की गई है जिनमें से 5 भा.वि.प. द्वारा निर्वाचित होंगे और पांच भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा संयोजित किए जाएंगे। यह विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है कि ये पांच गैर सदस्य कौन होंगे जिन्हें संयोजित किया जाएगा।

3.2 न्यायाधिपति अहमदी समिति रिपोर्ट 1994 में प्रथम बार यह सुझाव दिया गया था कि दस सदस्यीय समिति में पांच विधिज्ञ पार्षद तथा दो उच्चतर न्यायपालिका के सदस्य, एक शिक्षक और शेष दो वि.अ.आ. के सचिव तथा भारत सरकार के विधि मंत्रालय के सचिव होंगे। इस समिति के सुझाव को भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने 1995 के पश्चात् कार्यान्वयित कर दिया है तथा उच्चतम न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अनुसार समिति में रखा गया है। केवल एक व्यक्ति शिक्षक समुदाय से है। दूसरे शब्दों में, दस सदस्यों में पांच विधिज्ञ पार्षद, दो न्यायाधीश, एक शिक्षक तथा वि.अ.आ. के सचिव और विधि मंत्रालय के सचिव सम्मिलित हैं।

3.3 तथापि, विधि आयोग द्वारा तैयार किए गए कार्यपत्र (1999) में 15 सदस्यों की समिति का सुझाव दिया गया था। पांच विधिज्ञ परिषद् से, पांच संकाय से और शेष पांच में से दो न्यायपालिका में से और वि.अ.आ. के सचिव और विधि मंत्रालय के सचिव तीसरे और चौथे सदस्य के रूप में रखे गए थे तथा पांचवा सदस्य नेशनल लॉ स्कूल बंगलौर के निदेशक को रखने का सुझाव था।

3.4 भा.वि.प. ने कार्यपत्र में प्रस्तावित उक्त गठन का गहरा विरोध किया है क्योंकि इससे विभिन्न पार्षदों का विद्यमान अनुपात जो कि 5/10 है, 5/15 हो जाता है।

3.5 दूसरी ओर संकाय ने ऑल इंडिया लॉ टीचर्स कांफ्रेंस (22-25 जनवरी 1999) में विचार के दौरान यह मत प्रकट किया था कि दस सदस्यों की समिति में शिक्षक समुदाय का अधिक प्रतिनिधित्व होना चाहिए और अहमदी समिति गलत थी जिसने संकाय के केवल एक सदस्य व्यक्ति को समिति पर रखने की बात कही थी। हां, यह अवश्य है कि एक और सुझाव भी दिया गया था कि विधि शिक्षा का संबंध केवल संकाय से होना चाहिए और उसमें वकीलों और न्यायाधीशों के लिए कोई स्थान नहीं है।

3.6 इसी प्रकार से बंगलौर की 12.8.2002 की कानूनें ने, जिसे विधि शिक्षा संस्थाओं के अध्यक्षों की प्रथम राष्ट्रीय परामर्श कानूनें नाम दिया गया है, अपने सिफारिशों के प्रारूप में (पृष्ठ 10 पर) निम्नलिखित उल्लेख किया है:-

“भारत की विधि शिक्षा के विनियातक द्वांचे में इस समय बहुत त्रुटियां हैं और उन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। किसी भी विधि महाविद्यालय के कम से कम चार स्वामी हैं : वह विश्वविद्यालय जिससे वह महाविद्यालय संलग्न है; राज्य सरकार; विश्वविद्यालय अनुदान आयोग; तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद्। इन चारों के विभिन्न उद्देश्य, हित और क्षेत्र हैं और वे देश में विधि शिक्षा के सुधार के लिए किसी सामंजस्यपूर्ण मार्ग निर्देश की व्यवस्था नहीं करते।”

आयोग विं अंगां की इस बात से सहमत है कि शेष तीन सदस्य में से, जिन्हें नामनिर्दिष्ट किया जाएगा, भारत सरकार के विधि सचिव तथा विं अंगां के सचिव को छोड़ा जा सकता है। इन दोनों के स्थान पर, जिन पर इस समय विधिज्ञ पार्षदों से भिन्न व्यक्ति हैं, यह प्रस्तावित है कि संकाय में से दो और व्यक्तियों को लेकर संकाय से लिए गए व्यक्तियों की संख्या तीन कर दी जाए और संकाय का केवल एक व्यक्ति मात्र न रहे, जैसा कि इस समय है, और इन तीनों ही व्यक्तियों का नाम निर्देशन विं अंगां द्वारा किया जाए तथा, जैसा कि अगले अध्याय में कथित है। प्रस्तावित विधि शिक्षा समिति में संकाय के सदस्य होने चाहिए और ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो कार्यरत अध्यापक हों। यदि भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति में पदावधि के दौरान संकाय के तीन स्थानों में से कोई स्थान किसी समय रिक्त होता है, चाहे ऐसी रिक्ति सेवा निवृत्ति के कारण हो अथवा अन्यथा, विं अंगां को ऐसे संकाय सदस्यों का नामनिर्देशन करना होगा जो कार्यरत हैं और उन्हीं को प्रतिस्थापित किया जाएगा। ऐसे व्यक्ति प्रोफेसर/विधि महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक/उपकुलपति/विधि विश्वविद्यालय के निदेशक की श्रेणी के होने चाहिए जैसाकि अध्याय IV में अधिकथित है।

3.10 हमारी राय में समिति में रखे जाने वाले उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को विधि शिक्षा समिति का अध्यक्ष उसी रीति से बनाया जाना चाहिए जैसी कि इस समय है और अध्यक्ष का कास्टिंग बोट होना चाहिए।

3.11 हम यह सिफारिश भी करना चाहेंगे कि एक ऐसा पृथक उपबंध भी रखा जाए जो विधि शिक्षा समिति की बैठकों में भारत के अटर्नी जनरल को भाग लेने के लिए समर्थ बनाए चाहे ऐसा उनकी स्वेच्छा से हो अथवा समिति के अध्यक्ष के निमंत्रण पर, और उन्हें यदि आवश्यक हो तो, किसी प्रस्ताव पर मतदान का अधिकार रहना चाहिए।

3.12 अतः हम सिफारिश करते हैं कि भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति एक ऐसी समिति होगी जिसमें बकीलों, न्यायाधीशों और संकाय का प्रतिनिधित्व हो जिसकी कल्पना अखिल भारतीय विधिज्ञ समिति, 1953 ने की है और जिसका उल्लेख भारत के विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट में है जिसकी अध्यक्षता एम.सी. सीतलबाड़ ने की थी। इस समिति में भाग्विष्ण के पांच, संकाय के तीन, उच्चतम न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश/न्यायाधीश रहेंगे। भारत का अटर्नी जनरल इसमें स्वतः अथवा निमंत्रण पर भाग ले सकेगा और यदि आवश्यक हो तो किसी प्रस्ताव पर मतदान कर सकेगा।

उक्त प्रस्तावित धारा 10अ अ में संशोधन द्वारा किए जाएंगे।

3.13 अतः हम निम्नलिखित प्रस्तावित करने हैं:

(1) धारा 7(1)(ज) में “परामर्श” का उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए जैसा कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में जोड़े जाने वाली धारा 10अ अ में प्रस्तावित है।

(2) धारा 10 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) का संशोधन करना होगा जिससे कि भारतीय विधिज्ञ परिषद की ऐसी एक विधि शिक्षा समिति की सदस्यता के लिए उपबंध किया जाए जो विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करे। इस समिति में पांच सदस्य भारतीय विधिज्ञ परिषद के, उच्चतम न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश, उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधिपति/मुख्य न्यायाधीश, जिसका नाम निर्देशन भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किया जाएगा तथा विश्वविद्यालय द्वारा नामनिर्दिष्ट तीन विधि शिक्षक होंगे, जो कि विं अंगां प्रस्तावित विधि शिक्षा समिति के सदस्य होने चाहिए तथा सेवारत होने चाहिए और उनमें से एक किसी कानूनी विधि विश्वविद्यालय का निदेशक/कुलपति होना चाहिए। समिति के अध्यक्ष को, अर्थात्, उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को कास्टिंग बोट का अधिकार होगा।

(3) भारत का अटर्नी जनरल भाग्विष्ण की विधि शिक्षा समिति की बैठकों में भाग ले सकेगा और इस समिति के अध्यक्ष को अटर्नी जनरल को समिति की कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए निवेदन करने का हक होगा तथा जब भी वह उसमें भाग लें उन्हें मत देने का हक होगा।

(4) विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति की किसी बैठक में उठने वाले सभी प्रश्नों का

विनिश्चय समिति में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा तथा मत समान होने की स्थिति में अध्यक्ष को एक दूसरा मत या कास्टिंग मत देने का अधिकार होगा। यह सब करने के लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 10 में उपधारा (2अ) जोड़ने की आवश्यकता है।

(5) विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति की बैठक 3 मास में कम सक कम एक बार अवश्य होनी चाहिए।

(6) मूल अधिनियम की धारा 10अ की उपधारा (4) में, “उसकी प्रत्येक समिति, सिवाय अनुशासनात्मक समितियों के” शब्दों के स्थान पर “उसकी प्रत्येक समिति, सिवाय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति और अनुशासनात्मक समितियों के” शब्द रखे जाएंगे।

अध्याय IV

विंशती विधि शिक्षा समिति तथा परामर्श प्रक्रिया

धारा 7 (1) (ज) का इस प्रकार से संशोधन जिससे कि भाविंप० सभी विश्वविद्यालयों के साथ परामर्श न करे (जो कि अव्यवहार्य है) अपितु एक नए निकाय के साथ करे जिस निकाय में नामनिर्देशन विश्वविद्यालयों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों में से विंशती द्वारा किया जाए:

विंशती विधि शिक्षा समिति का गठनः प्रस्तावित धारा 10अ

4.0 जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1) (ज) में यह अपेक्षा की गई है कि भाविंप० विधि शिक्षा के मानक निर्धारित करने के प्रयोजन के लिए "विश्वविद्यालयों" के साथ परामर्श करेगी। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि यदि भाविंप० को ऐसे प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ परामर्श करना पड़े जो कि विधि की उपाधि प्रदान करता है तो इसमें व्यावहारिक कठिनाइयाँ होंगी। विंशती एक कानूनी कार्य समन्वय करना तथा विश्वविद्यालय में शिक्षा के मानक निर्धारित करना है। अतः धारा (1)(ज) के प्रयोजन के लिए विंशती एक विधि शिक्षा समिति का गठन कर सकती है जो समस्त विश्वविद्यालयों और सम्बद्ध विधि महाविद्यालयों की प्रतिनिधि होगी। ऐसी दशा में धारा 7 (1)(ज) के अंतर्गत परामर्श का कार्य विंशती द्वारा नामनिर्देशित विधि शिक्षकों के शैक्षिक निकाय के साथ होना चाहिए। हमारा यह मत है कि इस समिति में 10 प्रमुख विधि शिक्षक होने चाहिए जिनमें से छह ऐसे विधि शिक्षक हों जो कि कार्यरत हों, दो ऐसे हों जो सेवानिवृत हो चुके हों और दो सदस्य कानूनी विधि विश्वविद्यालयों के उप कुलपति या निदेशक हों। उक्त निकाय को विंशती की विधि शिक्षा समिति का नाम दिया जा सकता है। यह बात भी सुनिश्चित की जानी चाहिए कि विंशती ऐसे तीन विधि शिक्षकों का नाम निर्देशन करे जो विंशती विधि शिक्षा समिति के सदस्य हों और जो शिक्षकों को रूप में कार्यरत हों और उनको भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति का सदस्य बनाया जाए जिससे कि वे विंशती विधि शिक्षा समिति द्वारा लिए गए निर्णयों का उन निर्णयों के साथ समन्वय कर सके जो भाविंप० की विधि शिक्षा समिति द्वारा लिए जाएं। इन तीन में से एक कानूनी विधि विश्वविद्यालय का निदेशक/उप कुलपति होना चाहिए।

परामर्श की प्रक्रिया:

(i) परामर्श का पहला चरण धारा 7 (1)(ज) के अंतर्गत राज्य विधिज्ञ परिषदों के साथ परामर्श होना चाहिए जैसा कि इस समय है:

4.1 यह ध्यान देने योग्य है कि वर्तमान धारा 7 (1)(ज) भारतीय विधिज्ञ परिषद् और विश्वविद्यालयों के बीच तथा राज्य विधिज्ञ परिषदों के बीच परामर्श की अपेक्षा करती है। हम राज्य विधिज्ञ परिषदों के साथ परामर्श की बाबत किसी परिवर्तन का प्रस्ताव नहीं रख रहे हैं किन्तु विश्व विद्यालय के साथ परामर्श के मामले में, अर्थात्, प्रस्तावित शिक्षाविदों की विंशती समिति के साथ परामर्श, धारा 7(1)(ज) के अंतर्गत प्रभावशील परामर्श होना चाहिए। स्पष्ट है कि यदि भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति पहले राज्यों की विधिज्ञ परिषदों के साथ परामर्श करती है और उसके परिणाम स्वरूप जिन निर्णयों तक पहुंचा जाता है उन निर्णयों को यदि विंशती विधि शिक्षा समिति को उसके विचार प्राप्त करने के लिए भेजा जाता है तो यह सुविधाजनक होगा। इस दृष्टि से प्रस्तावित संशोधन इस रूप में होगा कि भाविंप० अपनी विधि शिक्षा समिति के माध्यम से राज्य क्रिंप के साथ परामर्श करेगी और उनके विचार प्राप्त हो जाने के पश्चात् उन प्रस्तावों को अंतिम रूप देगी जिन्हें विंशती की विधि शिक्षा समिति को भेजा जाना होगा जैसा कि हम इस अध्याय में कथन कर चुके हैं।

(i) तत्पश्चात् परामर्श का दूसरा चरण विंशती द्वारा नाम निर्देशित निकाय के साथ परामर्श होना चाहिए जैसा कि अब प्रस्तावित है:

4.2 भाविंप० द्वारा विंशती विधि शिक्षा समिति के साथ परामर्श राज्य विधिज्ञ परिषदों के साथ परामर्श के पश्चात् होगा और निम्नलिखित रूप में होगा।

4.3 जैसा कि ऊपर कहा गया है, भाविंप० की विधि शिक्षा समिति राज्य विंशती के साथ परामर्श करेगी और उसे अपने प्रस्तावों को अनंतिम रूप देना होगा। यह बात विंशती विधि शिक्षा समिति से आगे और परामर्श करने के प्रयोजन के लिए की जाएगी। तत्पश्चात् उक्त प्रस्तावों को भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति द्वारा विंशती द्वारा की विधि शिक्षा समिति को भेजना होगा। उक्त समिति को उन तीन शिक्षाविदों के विचारों का लाभ प्राप्त होगा जो भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति में भी हैं और जब एक बार विंशती द्वारा विंशती की समिति के विचारों को अंतिम रूप प्रदान कर दिया जाए तब विंशती द्वारा समिति के निर्णयों को भाविंप० की विधि शिक्षा समिति के समक्ष विचार विमर्श के लिए वापिस भेजा जाएगा। एक बार पुनः तीनों शिक्षाविद सदस्य विंशती द्वारा समिति के विचारों को भारतीय विधिज्ञ शिक्षा परिषद की विधि शिक्षा समिति के समक्ष स्पष्ट कर सकते हैं। न्यायपालिका के दो सदस्य भी उक्त प्रस्तावों पर विचार करेंगे। भाविंप० की विधि शिक्षा समिति जब उक्त मंतव्यों पर एक बार विचार कर लेगी तब उक्त समिति द्वारा, जिसमें अध्यक्ष (उच्चतम न्यायालय का सेवानिवृत न्यायाधीश) भी होगा, सामूहिक रूप से निर्णय लिया जाएगा। इस नए परिदृश्य में यह अपेक्षा की जाती है कि भाविंप० की विधि शिक्षा समिति तथा विंशती द्वारा की विधि शिक्षा समिति एक दूसरे के मंतव्यों पर सम्यक् और उचित रूप से विचार करेगी और किसी सर्वसम्मत निर्णय तक पहुंचेगी। निःसंदेह, सर्वसम्मति न होने की स्थिति में, विश्वविद्यालय परिषद् की विधि शिक्षा समिति के विधि शिक्षा समिति के बहुमत का मंतव्य मान्य होगा। आशा की जाती है कि ऐसी बैठक में सभी सदस्य और, विशेष रूप से, उच्च न्यायालय के सेवानिवृत/सेवारत न्यायाधीश भाविंप० समिति के बीच मतभेद न होने के कारण उत्पन्न होने वाली किसी समस्या का समाधानप्रद हल निकालने में अपनी उपस्थिति के कारण सहायक होंगे।

4.4 कुछ स्थितियों में, संकाय भाविंप० के समक्ष कुछ सुझाव ला सकती है और उसके समक्ष रख सकती है। अतः ऐसी पृथक् प्रक्रिया होनी चाहिए जिसके द्वारा विंशती द्वारा विधिज्ञ शिक्षा समिति अपने सुझावों को भाविंप० की विधि शिक्षा समिति के समक्ष रख सके और उसके पास भेज सके। उस दशा में, विधि परिषद् की समिति पहले राज्य विधिज्ञ परिषद् के साथ परामर्श करेगी और किसी अनन्तिम मंतव्य पर पहुंचने के पश्चात् अपने विचार विंशती द्वारा की विधि शिक्षा समिति को भेजेगी। उक्त समिति अपने अंतिम मंतव्य तैयार करके उन्हें भाविंप० की विधि शिक्षा समिति को भेजेगी।

4.5 एक दूसरा पहलू जिस पर विधिज्ञ परिषद को ध्यान देना होगा, यह है कि जब भी किसी नये पाठ्यक्रम को आरम्भ करना हो तब विश्वविद्यालयों को उसकी पूर्व सूचना पर्याप्त समय में दी जानी चाहिए जिससे कि वे प्रस्तावित पाठ्यक्रम का अनुपालन करने के लिए कदम उठा सकें। कल्पना कीजिए कि बौद्धिक संपदा से संबंधित अथवा साइबर विधि या पर्यावरण विधि से संबंधित कोई नया विषय आरम्भ करने का प्रस्ताव है। ध्यान देने योग्य है कि सभी 460 विधि महाविद्यालय तुरस्त इन विषयों में से प्रत्येक के अध्यापन के लिए 460 विधि शिक्षक जुटाने में समर्थ नहीं हो सकते—ऐसे शिक्षक जो सम्यक् रूप से अहंत हों और जो इन विषयों की कक्षा ले सकें। और कठिनाइयाँ भी हो सकती हैं जैसे कि मानक पुस्तकों का उपलब्ध न होना जो विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। प्रबंधक वर्गों तथा संकाय से ऐसी गंभीर शिक्षायतें प्राप्त हुई हैं कि विधिज्ञ परिषद् के कुछ एक निर्देश मनमानी प्रकृति के होते हैं। विधि महाविद्यालयों की इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं को हम अवरोध या अवज्ञा नहीं मान सकते। विश्वविद्यालयों के मार्ग में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयाँ की ओर भी ध्यान देना ही होगा।

4.6 उदाहरण के लिए, भाविंप० द्वारा परिचालित हाल ही के पाठ्यक्रम में ऐसे अनेक विषय हैं जिन पर सम्भवतः पुनः विचार की आवश्यकता है। जिस रीति से कुछ महत्वपूर्ण विषयों को वैकल्पिक विषयों की सूची में रखा गया है और जिस प्रकार से ऐसे दो विषयों को, जिनमें कोई अधिक संबंध नहीं है, एक प्रश्नपत्र में सम्मिलित कर दिया गया है, संशोधन की आवश्यकता है। अनेक कांफ्रैन्सों में और संकाय द्वारा प्रकाशित लेखों में ऐसे विरोधाभासों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। आयोग को ऐसा प्रतीत होता है कि संकाय के इस विचार में काफी दम है कि प्रभावशाली परामर्श से और फेकलटी के साथ और अधिक विचार विमर्श से ऐसे विरोधाभासों को दूर किया जा सकता था। नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी द्वारा आयोजित विधि प्रोफेसरों की 12.8.2002 की काम्पेन्स में भी यही मत व्यक्त किया गया था। दिल्ली विश्वविद्यालय में संकाय की अ.भा. संकाय कांफ्रैन्स के पश्चात् “21वीं शताब्दी में भारत में विधि शिक्षा-समस्याएं और प्रायोजनाएं” नाम से प्रकाशित ग्रंथ में, जिसका सम्पादन प्रो. ए. के. कॉल तथा प्रो. वी. के. आहूजा ने किया है, अनुभवी

प्रोफेसरों के अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। संकाय ने जो सुझाव दिए हैं उन पर गंभीर विचार अपेक्षित है। हमने प्रो. गुरदीप सिंह के लेख “रिवेमिंग प्रोफेशनल लीगल एज्यूकेशन : सम औवजर्वेशन आन द एल एल बी करीक्यूलम रिवाइज्ड वाई द बार काउंसिल आफ इण्डिया” शीर्षक के अंतर्गत लेख का इसके पहले उल्लेख किया है और हम अनुभव करते हैं कि उक्त लेख को पढ़ना अत्यन्त लाभप्रद होगा।

4.7 इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि विधि शिक्षा के मानकों का संबंध विधि शिक्षा के विभिन्न पक्षों से है। विधिज्ञ वर्ग तथा संकाय दोनों इनसे परिचित हैं। अतः ऐसे मानक गहन अध्ययन के पश्चात् और विधिज्ञ परिषद तथा संकाय के मध्य प्रभावी विचार विमर्श के पश्चात् निर्धारित किए जाने चाहिए। विधिज्ञ पार्षदों, न्यायाधीशों तथा विधि शिक्षा समिति के संकाय सदस्यों को ‘विधि शिक्षा’ विषय पर गहन अध्ययन करना चाहिए क्योंकि यह अपने आप में एक विशेष शाखा है। विधिज्ञों अथवा संकाय के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि वे विधि शिक्षा के संबंध में सामान्य अथवा धूमिल विचार रखें। इस विषय पर भारतीय और विदेशी दोनों का बहुत साहित्य उपलब्ध है। यदि कोई वि.अ.आ. के पाठ्यक्रम विकास केन्द्र की 1988-90 की रिपोर्ट को पढ़े तो उसे ज्ञात हो जाएगा कि यह बहुत विस्तृत है तथा उसमें विधि शिक्षा के विभिन्न पक्ष सम्मिलित हैं और यह रिपोर्ट 800 पृष्ठों की है और 2001 की पश्चात्वर्ती रिपोर्ट 500 पृष्ठों में है। और भी अनेक पूर्वतर रिपोर्ट हैं। (भारतीय विधि संस्थान के विधि शिक्षा जनरल में लेखों को भी देखा जा सकता है)। नेशनल ला स्कूल यूनीवर्सिटी बंगलौर द्वारा 2001 में तैयार किए गए नये पाठ्यक्रम का आधार मैक केट रिपोर्ट तथा हारवर्ड का माडल है। तथापि, जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है वह भारतीय स्थितियों के अनुकूल होना चाहिए। उदारीकरण, प्राइवेटीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में नए पाठ्यक्रम आवश्यक हैं। विधि शिक्षा के मानकों का संबंध महाविद्यालयों में प्रवेश, पाठ्यक्रम, महाविद्यालयों में प्रवेश के समय परीक्षा की पद्धति से भी और महाविद्यालय को छोड़ने तथा व्यवसाय में प्रवेश करने एवं अध्यापकों की अर्हताओं आदि से है। इन सभी विषयों पर विधिज्ञ परिषद् और संकाय के बीच पूर्ण समन्वय होना चाहिए।

4.8 यहाँ एक और पहलू है जिसका संबंध भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा उसकी विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों के क्रियान्वयन से है। विधि आयोग के पूर्वतर कार्यपत्र में सुझाव दिया गया था कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् को अपनी विधि शिक्षा समिति के निर्णयों को स्वीकार करना चाहिए। और उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए। यह प्रसन्नता की बात है कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् के 3.8.2000 के पत्र में इस परिषद् ने अपनी विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों को, उन पर कोई भी आपत्ति उठाए बिना, क्रियान्वित करना स्वीकार किया है।

उक्त पत्र में उक्त परिषद् ने उन विभिन्न विषयों को भी स्पष्ट कर दिया है जिनकी बाबत विधि शिक्षा समिति अपने विचार प्रकट कर सकती है। यह एक अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है और ऐसा करने से चिकित्सा परिषद्, अधिनियम, 1956 की धारा 20 के समान कोई उपबंध करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। उक्त धारा 20 में अपेक्षा की गई है कि चिकित्सा परिषद् की समिति और भारतीय चिकित्सा परिषद के बीच किसी अंतर की स्थिति में ऐसे विषय को केन्द्रीय सरकार को निर्दिष्ट किया जाएगा। भारतीय विधिज्ञ परिषद के तारीख 3.8.2000 के उपरोक्त पत्र में प्रस्ताव है कि धारा 7 (1) (ज) निम्नलिखित रूप में होनी चाहिए—

“भारतीय विधिज्ञ परिषद की विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों के अनुसार व्यावसायिक विधि शिक्षा के, जिनके अंतर्गत पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धति, परीक्षा, विद्यार्थियों के प्रवेश, अध्यापकों की संख्या, स्थिति तथा बुनियादी ढांचे की अपेक्षाएं और,के साथ परामर्श करके, प्रबंध भी आते हैं, मानक निर्धारित करना।”

4.9 इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अतः विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के विचारों को भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा किसी नानुकूर के बिना क्रियान्वित करना चाहिए।

4.10 जहाँ तक भारतीय विधिज्ञ परिषद् और संकाय के बीच समन्वय की बात है, भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा विहित की जाने वाली परामर्श प्रक्रिया और “न्यूनतम मानक” की बाबत विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट के प्रति निर्देश लाभप्रद होगा। जहाँ तक ‘मानक’ के अर्थ का प्रश्न है, हम अध्याय V में इस पक्ष पर चर्चा करेंगे।

4.11 श्री एम् सी० सीतलवाड की अध्यक्षता में विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट (1958) में उपरोक्त पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है। उक्त रिपोर्ट का उल्लेख करना उपयोगी है। उसमें (पृष्ठ 546 के पैरा 54 में) निम्नलिखित उल्लेख है:

“हम पहले ही देख चुके हैं कि इग्लैण्ड में किस प्रकार से विधि वृत्तिक शिक्षा और विधि व्यवसाय में प्रवेश को एक ऐसे नियंत्रित किया जाता है जिसमें केवल व्यावसायिक व्यक्ति है। कोई कारण नहीं है कि भारत में भी इसी प्रकार के नियंत्रण और विनियमन को व्यावसायिक व्यक्तियों को सौंप दिया जाना चाहिए। व्यावसायिक प्रशिक्षण और विश्वविद्यालय को विनियमित करने वाले नियायों के बीच समन्वय, न्यूनतम मानक सुनिश्चित करने की दृष्टि से, ऊपर उल्लिखित रीति से प्राप्त हो सकता है। हमारी राय है कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति को विभिन्न विश्वविद्यालयों में दी जाने वाली विधि शिक्षा के मानकों को बनाए रखने के लिए विश्वविद्यालयों के परिभ्रमण और निरीक्षण द्वारा विनियमित करने के लिए सशक्त किया जा सकता है जैसा कि चिकित्सीय और दन्त चिकित्सा व्यवसाय की दशा में किया जाता है अथवा जैसा कि अमरीका के विधिज्ञ संगठनों द्वारा अमरीका के विश्वविद्यालयों की दशा में किया जाता है। यदि परिषद् या उसकी समिति का ऐसा मत हो कि विधिक शिक्षा के क्षेत्र में किसी विशेष विश्वविद्यालय द्वारा विहित मानक पर्याप्त नहीं है अथवा विधिक शिक्षा देने के लिए उसके द्वारा स्थापित संस्थाएं अथवा उससे सम्बद्ध संस्थाएं पूर्ण रूप से सक्षम नहीं हैं या समुचित रूप से नहीं चल रही हैं तो उस विश्वविद्यालय के स्नातकों को व्यावसायिक परीक्षा में प्रवेश देने से इंकार कर तक किया जा सकता है जब तक वह विधिक न्यूनतम मानकों को प्राप्त करने के लिए कदम नहीं उठाता है।”

भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा व्यवसाय के लिए आवश्यक न्यूनतम मानक नियत करने का सिद्धांत इसी प्रकार से बना है। स्पष्ट है कि विधिज्ञ अथवा विश्वविद्यालय इन मानकों में कमी नहीं कर सकते। तथापि, वे उच्चतर मानकों की अपेक्षा, उदाहरण के लिए एलएलएम् और पीएचडी० की उपाधियों के लिए और एलएलएबी० की उपाधियों के लिए भी, निश्चित रूप से कर सकते हैं और उच्चतर मानक तय कर सकते हैं।

4.12 इस संबंध में, विश्वविद्यालय आयोग की 14वीं रिपोर्ट के पृष्ठ 550 पर 25वीं सिफारिश का उल्लेख करना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित रूप में है:

“25: अखिल भारतीय विधिज्ञ परिषद् को यह सुनिश्चित करने के लिए सशक्त करना चाहिए कि विधि महाविद्यालय अपेक्षित न्यूनतम मानक बनाए रख रहे हैं। अथवा नहीं और उसे व्यवसाय में प्रवेश के प्रयोजन के लिए उन संस्थाओं द्वारा प्रदत्त उपाधियों को मान्यता प्रदान करने से इंकार करने के लिए सशक्त किया जाना चाहिए जो संस्थाएं न्यूनतम मानकों के अनुरूप नहीं हैं।”

न्यायाधीश अहमदी समिति ने भी 1994 में यही मत प्रकट किया था। आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करने के पश्चात् समिति ने कहा:—

“न्यायाधीश अहमदी समिति ने भी यही मत प्रकट किया है कि विधिज्ञ परिषद् को विधि विद्यालयों में प्रवेश के प्रक्रम पर और व्यवसाय में नामांकन किए जाने के प्रक्रम पर केवल न्यूनतम मानक नियत करने चाहिए। (ए आई आर 1972 आंप्र० 206 तथा एआई आर 1985 कर्ना० 223) ”

समिति द्वारा उद्घृत कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय में, अर्थात्, शोभना कुमार बनाम भंगलूर विश्वविद्यालय (ए आई आर 1985 कर्ना० 223) में न्या० श्री रामाजोइस ने उल्लेख किया है कि:

“इन उपबंधों (धारा 49 (1) (कच) और धारा 7-अधिवक्ता अधिनियम) को सम्मिलित रूप से पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि विधि शिक्षा के मानक सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व विधिज्ञ परिषद् को सौंपा गया है और उसे विधि पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए प्रात्रा की न्यूनतम शर्त विहित करने के लिए भी सशक्त किया गया है।.....

.....अतः, विश्वविद्यालय विधि उपाधि पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए ऐसी कोई शर्त विहित नहीं कर सकते जो विधिज्ञ परिषद् द्वारा विहित पात्रा की शर्तों से निम्नतर हों।”

कानूनी स्थिति यही प्रतीत होती है।

4.13 आशा की जाती है कि, यदि भारतीय विधिज्ञ परिषद् और संकाय अध्याय III और IV में प्रस्तुत प्रस्तावों को क्रियान्वित करते हैं तो भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा सभी विश्वविद्यालय से परामर्श करने की बाबत कठिनाइयाँ और अपर्याप्त परामर्श की बाबत संकाय की शिकायत सुलझ जाएगी।

4.14 अतः प्रस्ताव है कि विधिअभ्यास की दस सदस्यों की एक विधि शिक्षा समिति का गठन किया जाए जिसमें छः सदस्य प्रोफेसर डीन या प्रधानाध्यापक या समतुल्य रैक के कार्यरत विद्यार्थियों और उसी श्रेणी के दो विधि शिक्षक हों जो सेवा निवृत हो चुके हों तथा दो सदस्य कानूनी विधि विश्वविद्यालय के निदेशक/उप कुलपति होने चाहिए।

4.15 अगला प्रस्ताव भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति और विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति के परामर्श की बाबत है और यह प्रस्ताव भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा इसकी स्वीकृति और क्रियान्वयन की बाबत है।

4.16 एक उपबंध विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति द्वारा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति को सुझाव देने के बारे में भी करना होगा और उक्त परिषद् राज्य विधिज्ञ परिषद् तथा विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करने की प्रक्रिया का अनुसरण करेगी।

4.17 यह भी प्रस्तावित है कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति, विधि शिक्षा के मानकों से संबंधित कोई प्रस्ताव पारित करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखेगी:-

- (क) वह अवधिज्ञ जिसमें विधि महाविद्यालयों से आवश्यक मूलतंत्र की व्यवस्था करने की अपेक्षा की जाएगी।
- (ख) किसी नए विषय को, जिसे पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाए, पुस्तकों की उपलब्धता और ऐसे संकाय सदस्यों की उपलब्धता जो उस विषय को पढ़ाने के लिए अर्हत हों;
- (ग) प्रस्ताव को क्रियान्वित करने के लिए विधि महाविद्यालय के पास निधि की उपलब्धता तथा आवश्यक निधि जुटाने के लिए अपेक्षित अवधि।

4.18 विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति को गठन के लिए प्रस्ताव विधिअभ्यास अधिनियम में प्रस्तावित संशोधनों में सम्मिलित किए गए हैं और परामर्श प्रक्रिया के लिए प्रस्ताव अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में जोड़े जाने के लिए प्रस्तावित धारा 10अअ में सम्मिलित किए गए हैं।

4.19 परामर्श की प्रक्रिया वह होगी जिसका उल्लेख ऊपर पैरा 4.3, 4.4, 4.5 तथा इस अध्याय के अन्य दैराओं में किया गया है।

4.20 अतः हम सिफारिश करते हैं कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में धारा 10अअ के रूप में एक नई धारा परामर्श की प्रक्रिया के लिए उपबंध करने के बास्ते को जाए और यह धारा निम्नलिखित रूप में हो:-

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की परामर्श प्रक्रिया:

“10अअ: धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) के अधीन परामर्श की प्रक्रिया निम्नलिखित होगी; अर्थात्:-

- (क) व्यावसायिक विधि शिक्षा के मानकों से संबंधित प्रस्तावों की बाबत, विधिज्ञ परिषद् की विधि समिति सर्वप्रथम राज्य विधि परिषद् के साथ परामर्श करेगी और अनन्तिम प्रस्ताव तैयार करेगी और उन्हें विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति को उन प्रस्तावों पर उनके विचार प्राप्त करने के लिए संसूचित करेगी।
- (ख) विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति के विचार प्राप्त होने के पश्चात् विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति उन पर विचार करेगी और अंतिम निर्णय पर पहुंचेगी।
- (ग) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के अंतिम निर्णय, जो उसने खण्ड (ख) के अंतर्गत किए हों, भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा प्रवर्तित किए जाएंगे तथा सभी विश्वविद्यालयों पर

और विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध सभी विधि महाविद्यालयों पर वहाँ तक बाध्यकर होंगे जहाँ तक उनका संबंध विधि व्यवसाय करने के लिए विधि संघ में नामांकन कराने के लिए विद्यार्थियों के लिए विधि शिक्षा के आवश्यक मानकों से हैं;

- (घ) विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति खण्ड (क) में निर्दिष्ट विषयों की बाबत कोई भी प्रस्ताव विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के विचारार्थ भेज सकेगी।
- (ङ) यदि विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति खण्ड (घ) के अंतर्गत कोई प्रस्ताव प्राप्त होता है तो विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति खण्ड (क) से खण्ड (ग) तक में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करेगी;
- (च) विधि शिक्षा के मानक, जिन्हें इस धारा के अधीन अंतिम रूप दिया जाएगा, न्यायालयों में विधि व्यवसाय के लिए विधिज्ञ संघ में नामांकन कराने के लिए विद्यार्थियों के लिए आवश्यक न्यूनतम मानक होंगे।

4.21 हम यह सिफारिश करते हैं कि विधिअभ्यास, 1956 में संशोधन किया जाए और विधिअभ्यास की 'विधि शिक्षा समिति' के गठन के लिए धारा 5अ के रूप में एक पृथक उपबंध निम्नलिखित रूप में जोड़ा जाए:-

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विधि शिक्षा समिति

- “5अ. (1) आयोग विधिअभ्यास की एक विधि शिक्षा समिति का गठन करेगी जिसमें 10 सदस्य होंगे जिनमें से-
- (क) छह प्रोफेसर, डीन या प्रधानाध्यापक की रैक के कार्यरत विधि शिक्षक होंगे और अन्य भी उसी रैक के व्यक्ति होंगे।
- (ख) दो सदस्य प्रोफेसर, डीन या प्रधानाध्यापक या समतुल्य रैक के सेवानिवृत विधि शिक्षक होंगे।
- (ग) दो सदस्य कानून द्वारा स्थापित विधि विश्वविद्यालय के उपकूलपति या निदेशक होंगे।
- (2) विधिअभ्यास की विधि शिक्षा समिति अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7(1) के खण्ड (ज) के प्रयोजन के लिए सभी विश्वविद्यालयों और विधि महाविद्यालयों का प्रतिनिधित्व करेगी।
- (3) विधिअभ्यास निम्नलिखित सदस्य नामनिर्दिष्ट करेगा-
- (क) उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट 6 सदस्यों में से दो सेवारत विधि अध्यापक;
- (ख) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में निर्दिष्ट प्रवर्ग में से एक सदस्य।

उक्त व्यक्ति अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का अधिनियम 25) की धारा 10 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) के उपखण्ड (पअ) के प्रयोजन के लिए विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के सदस्य होंगे।

है। रिपोर्ट में नियमों के नियम 21 तथा अनुसूची 1 के प्रति निर्देश भी है जिनका संबंध पांच वर्षीय पाठ्यक्रम से है और जिसमें निम्नलिखित निर्देश दिया गया है:-

“10. प्रत्येक विश्वविद्यालय विधि शिक्षा प्रदान करने की लेक्चर पद्धति के साथ केस पद्धति, ट्यूटोरियल पद्धति तथा अन्य आधुनिक तकनीकों को सहयोगित करने का प्रयत्न करेगा”।

रिपोर्ट में निम्नलिखित सिफारिश की गई है:

“इस नियम को, बाध्यकारी रूप से, संशोधित किया जाना चाहिए तथा हमें इस नियम में समस्या पद्धति, नाटकीय न्यायालयों, नाटकीय विचारणों और अन्य पक्षों को भी सम्मिलित करना चाहिए तथा उन्हें अनिवार्य बनाना चाहिए।”

उपरोक्त सिफारिशों से मेल खाने वाले पांच वर्षीय पाठ्यक्रम में हमने नियम 2(ग) पर ध्यान दिया है जो निम्नलिखित रूप में है:-

“2(ग). : विधि के पाठ्यक्रम में, महाविद्यालय द्वारा दिए जाने वाले अपेक्षित संख्या में लेक्चरों, ट्यूटोरियलों, नाटकीय न्यायालयों और व्यावहारिक प्रशिक्षणों को भी नियमित उपस्थिति के अंतर्गत स्थान दिया गया है.....”

5.5 नियम 3(2) में सम्पर्क और पत्राचार कार्यक्रम, ट्यूटोरियलों, घर के लिए कार्यक्रमों, पुस्तकालय, विश्लेषणात्मक कार्य आदि का उल्लेख है-अर्थात् कुल मिलाकर 30 घंटे प्रति सप्ताह किन्तु कक्षा लेक्चरों की अवधि 20 घंटे से कम नहीं होनी चाहिए।

5.6 नियम 9(1) में भाग I (अनिवार्य) के लिए छह विषयों की सूची है; नियम 9(2) के अंतर्गत भाग II (अनिवार्य) के लिए 21 विषयों की सूची है; नियम 9(3) के अंतर्गत (वैकल्पिक) के लिए 15 विषयों की सूची है; जिसमें से तीन चुने जाने होते हैं। नियम 9(4) में छह माह के व्यावहारिक प्रशिक्षण का उल्लेख है जिसमें निम्नलिखित अनिवार्य प्रश्नपत्र होंगे:-

प्रश्नपत्र I: नाटकीय न्यायालय, परीक्षण पूर्व तैयारियां और परीक्षण कार्यवाही में भागीदारी प्रत्येक के लिए 10 अंक, कुल मिलाकर 30 अंक।

दो मामलों में—एक सिविल और दूसरा दापिङ्क में, गतिविधियों पर ध्यान देना (30 अंक)

साक्षात्कार के तकनीक तथा परीक्षणपूर्व तैयारियां (30 अंक)

मौखिक परीक्षा (10 अंक)

प्रश्नपत्र II: प्रारूपण, अभिवचन (15 मामले) तथा दस्तावेज तैयार करना (15 मामले)

सिविल, दापिङ्क, रिट याचिका तथा विक्रयपत्र, बंधक पत्र, आदि का प्रारूपण।

प्रश्नपत्र III: व्यावसायिक आचरण, वकीलों के लिए लेखा तैयार करना और वकीलों तथा न्यायालयों के बीच संबंध – (80 अंक)

मौखिक परीक्षा – (20 अंक)

प्रश्नपत्र IV: इस प्रश्नपत्र का संबंध लोकहित मामलों, विधिक सहायता तथा विधिक सम सेवाओं से है। (100 अंक)

5.7 तथापि हम विधि शिक्षा के मानकों और दक्षता संबंधी कठिपय पक्षों की आगे चर्चा करना चाहेंगे।

व्यावसायिक दक्षता तथा व्यावसायिक मूल्य—मेक क्रेट रिपोर्ट:

5.8 विधि के क्षेत्र में दक्षता के क्षेत्र में हम यू.एस.ए की मेक क्रेट रिपोर्ट (1992) का उल्लेख करेंगे जो कि अमरीका के वकील संघ द्वारा तैयार की गई “टास्कफोर्स आन लॉ स्कूलस एण्ड दि प्रोफेशन: नैरोइंग दि गेप” विषयक रिपोर्ट है। इसका अनुसरण ए.बी.ए. हाउस ऑफ डेलीगेट्स के पश्चात्वर्ती प्रस्ताव में तथा व्यवसाय शिक्षा विषय पर 1996 (शिकागो) की रिपोर्ट में किया गया था। इंग्लैंड एण्ड वेल्स लॉ सोसायटी द्वारा

अध्याय V

विधि शिक्षा, विधि दक्षता और मूल्यों के मानक

नवीन वैश्वीकरण की समस्याएं और संबद्धता

5.0 अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7(1)(ज) के उपबंध भारतीय विधिज्ञ परिषद् को विधि शिक्षा के ऐसे मानक निर्धारित करने के लिए समर्थ बनाते हैं जो उन विद्यार्थियों के लिए आवश्यक हैं जो विधि संघों में नामांकन करना चाहते हैं। अतः मानकों के कुछ पक्षों का, विशेषरूप से उनका जिनका संबंध विधिक दक्षता से है, उल्लेख करना आवश्यक है। अध्याय IV में हमने भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा नियत किए जाने वाले ‘न्यूनतम मानकों’ के संबंध में चर्चा की है। अब हम इस बात का उल्लेख करेंगे कि ‘विधि शिक्षा के मानक’ का क्या अर्थ है?

5.1 विधि शिक्षा के मानकों में सुधार के लिए समय-समय पर अनेक प्रयत्न किए गए हैं। श्री एम्सौं सीतलवाड की अध्यक्षता में विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट सर्वोत्तम है और विधि शिक्षा के विषय में अन्य रिपोर्ट इसमें ब्यौरेबार दी गई है। यह ऐसी रिपोर्ट है जिसे हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए। विधिअभ्यास पाठ्यक्रम रिपोर्ट, 1988-90 तथा 2001 की रिपोर्ट भी पढ़ी जानी चाहिए। इन्हें विष्णुत प्रोफेसरों ने, जिनमें प्रो. उपेन्द्र वर्षाक्षी भी थे, तैयार किया था। हाल ही की अहमदी समिति की रिपोर्ट को पढ़ना आवश्यक है जिसमें भाविक्षण के अध्यक्ष के पक्षों तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों के विधि शिक्षा विषयक विचारों को उद्धृत किया गया है। इसमें विधि के पाठ्यक्रम, उपस्थिति, प्रवेश परीक्षा, अंतिम परीक्षा, अध्ययन पद्धति, केस पद्धति, समस्या पद्धति, समितियों का गठन और सदस्यता तथा प्रशिक्षुता तथा विधिज्ञ परीक्षा की आवश्यकता की बाबत विभिन्न सुझाव दिए गए थे। इस अध्याय में हम इनमें से कुछ पक्षों का संक्षेप में उल्लेख कर रहे हैं और हम यू.एस.ए. की मैक क्रेट रिपोर्ट में सम्मिलित विधिक दक्षता और मूल्यों पर जोर देना चाहते हैं।

विधि शिक्षा और विधि दक्षता के मानक:

5.2 भारतीय विधिज्ञ परिषद् के नियमों में भाग IV (30.11.1998 तक संशोधित रूप में), जिसमें ‘विधि शिक्षा के मानक और अधिवक्ता के रूप में प्रवेश के लिए विधि उपाधियों की मान्यता’ के विषय में चर्चा है, भाग (क) जिसमें 10.2 या 11.1 के पांच वर्षीय विधि पाठ्यक्रम का उल्लेख है, भाग (ख) जो स्नातक स्तर के पश्चात् 3 वर्षीय विधि पाठ्यक्रम से संबंधित है और भाग (ग) उन नियमों का उल्लेख करता है जो राज्य परिषदों द्वारा विधि विद्यालयों के निरीक्षण से संबंधित हैं। इनके अतिरिक्त अनुसूची I में भाग क के नियम 21 अथवा भाग ख के नियम 14 के अंतर्गत जारी किए गए निर्देश हैं। अनुसूची II में वह प्रश्नावली है जिसके उत्तर किसी भी महाविद्यालय को देने होंगे जो सम्बद्धता के लिए आवेदन करता है। अनुसूची III का संबंध विधि महाविद्यालय के निरीक्षण के लिए तैयार किए गए प्रारूप से है और अनुसूची IV में वह प्रारूप है जिसमें महाविद्यालय को वार्षिक विवरण देनी होगी। हमारे समक्ष अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 24 (3)(घ) के अधीन बनाए गए प्रशिक्षण नियम, 1995 भी हैं जिन्हें उच्चतम न्यायालय ने अधिनियम का उल्लंघन करने के कारण अवैध घोषित किया है।

5.3 हाल ही में विधि महाविद्यालय खोलने की अनुमति प्राप्त करने के लिए आवेदन का एक नया प्रारूप विहित किया गया है जिसका संबंध निरीक्षणों, अनुपालनों, विधि शिक्षा के मानकों से संबंधित प्रत्युत्तरों और उपाधियों की मान्यता आदि से है।

5.4 अहमदी समिति की रिपोर्ट में शिक्षा की पद्धति के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है। इसमें हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर लांगडेल द्वारा आरम्भ की गई “केस पद्धति” का तथा प्रो. कार्ल लेवेलिन तथा न्यायाधीश जेरोम फॅक एवं नॉटरडम ला स्कूल द्वारा प्रारम्भ की गई “समस्या पद्धति” का उल्लेख किया गया

'प्रीपरेटरी स्किल्स: रिब्यू ऑफ दि इन्सटीट्यट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज (आकलैण्ड) 1990 विषय पर किए गए अध्ययन; कुछ पूर्वीतर रिपोर्टें, जैसे, क्रॉम्स्टन रिपोर्ट आन लाइयर कॉम्पाइटन्सी (यू एस) (1979) तथा केरीएन रिपोर्ट आन ट्रेनिंग फार पश्चिमिक प्रोफेशनल्स आफ लों (1971), वाशिंगटन का उल्लेख करना भी आवश्यक है। कहा जाता है कि नेशनल ला स्कूल बंगलौर ने मेक क्रेट रिपोर्ट तथा हरवार्ड पाठ्यक्रम के आधार पर, भारतीय स्थिति के अनुरूप कुछ संशोधनों के साथ, एक नया पाठ्यक्रम 2001 में तैयार किया था।'

5.9 मेक क्रेट रिपोर्ट में 10 अध्याय हैं जो भाग I और III तक में हैं। रिपोर्ट के अध्याय 5 की विषयवस्तु 'बकालीत दक्षता के आधारभूत सिद्धांतों और व्यावसायिक मूल्यों का विवरण' है; अध्याय 7 में 'विधि विद्यालय में अध्ययन के दौरान व्यावसायिक विकास' का उल्लेख है; अध्याय 8 'विधि विद्यार्थी से विधि व्यवसायी के रूप में परिवर्तन' के बारे में है, अध्याय 9 'विधि विद्यालय के पश्चात् व्यावसायिक विकास' के बारे में तथा अध्याय 10 'व्यावसायिक विकास की प्रक्रिया में वृद्धि के लिए एक राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता' के बारे में है। (देखिए, <http://www.abanet.org/legaled/publications/onlinepubs/maccrate.html>).

5.10 रिपोर्ट के अध्याय 7 (अ) में जिन विधिक दक्षताओं का उल्लेख है उनमें (1) विधि अनुसंधान, (2) तथ्यों का अन्वेषण, (3) पत्राचार, (4) परामर्श, (5) परिध्रमण, (6) मुकदमें में विकल्पों के बारे में तथा विवाद को सुलझाने के विकल्पों के बारे में पक्षकारों को परामर्श देने के लिए अपेक्षित दक्षता, (7) विधि कार्य को प्रभावी ढंग से आयोजित करने और प्रबंध करने के लिए आवश्यक प्रशासनिक दक्षता को पहचानने की दक्षता तथा (8) आचार संबंधी दुविधाओं को समझने और सुलझाने की दक्षता का विश्लेषण करने की दक्षता अंतिम है।

5.11 मेक क्रेट रिपोर्ट के अनुसार व्यावसायिक मूल्यों में 'व्यावसायिक उत्तरदायित्व का प्रशिक्षण' सम्मिलित है तथा इन मूल्यों का संबंध 'व्यावसायिक उत्तरदायित्व सहित' तथा व्यावसायिक आचरण के आदर्श नियमों के सिद्धांतों' मात्र से नहीं है; इन मूल्यों की परिधि में 'व्यवसाय के मूल्य', जिनके अंतर्गत 'पक्षकारों के जीवन और मामलों के संबंध में व्यवसायिक बाध्यताएं और उत्तरदायित्व' भी आता है। ये मूल्य अनेक हैं, जैसे, (1) सक्षमतापूर्ण प्रतिनिधित्व का मूल्य, पक्षकारों की सेवा में संलग्न व्यवसाय का सदस्य होने के नाते वकील की उन आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता और उनका विश्लेषण, (2) न्याय, निष्क्रिया और नैतिकता के प्रोन्नयन का प्रयत्न करने का मूल्य; वे आदर्श जिनके प्रति वकील को व्यवसाय का सदस्य होने के नाते प्रतिबद्ध होना चाहिए और जिनके कारण न्याय की गुणवत्ता के प्रति उनका विशेष उत्तरदायित्व है, (3) व्यवसाय में सुधार का प्रयत्न करने का मूल्य; उन आदर्शों की खोज जिनके प्रति किसी वकील को एक (स्वशासी) व्यवसाय का सदस्य होने के नाते प्रतिबद्ध होना चाहिए, (4) व्यावसायिक स्वविकास, उन आदर्शों के विश्लेषण का मूल्य जिनके प्रति वकील को एक 'विद्वातापूर्ण व्यवसाय' का सदस्य होने के नाते प्रतिबद्ध होना चाहिए। रिपोर्ट में 'दक्षताओं' और 'मूल्यों' के बीच संबंध का भी उल्लेख है।

5.12 रिपोर्ट के अध्याय V (ख) में 'मूलभूत वकालीत दक्षताओं' का उल्लेख है, जो निम्नलिखित है:

- (1) समस्या का निदान, वैकल्पिक समाधान तथा पद्धतियां अपनाना, कार्य योजना का विकास, योजना का क्रियान्वयन तथा योजना की प्रक्रिया में नई जानकारी और नये विचारों के लिए स्थान रखना।
- (2) कानूनी प्रश्नों की पहचान और गठन, सुसंगत विधि सिद्धांतों का गठन, विधि सिद्धांत का विस्तार, विधि सिद्धांत का मूल्यांकन तथा विधि तर्कों की आलोचना करने और उन्हें संशिलिष्ट करने की दक्षता।
- (3) विधि नियमों और संस्थाओं की प्रकृति की जानकारी, विधि अनुसंधान के अत्यन्त आधारभूत उपचारों का प्रयोग करने की जानकारी और सामर्थ्य, सामज़स्य तथा प्रभावशील अनुसंधान, परिकल्पना करने और क्रियान्वित करने की क्रिया की समझ।
- (4) तथ्यात्मक अन्वेषण की आवश्यकता का अवधारण, तथ्यात्मक अन्वेषण योजना, अन्वेषण उपचारों का क्रियान्वयन, ग्रहण योग्य जानकारी को स्परण में रखना तथा आयोजित करना तथा यह निर्णय लेना कि तथ्यों को एकत्रित करने की प्रक्रिया, एकत्रित जानकारी के

मूल्यांकन की प्रक्रिया को कब पूर्ण किया जाए, आसूचना प्राप्त करने की परिकल्पना का अवधारण; आसूचना प्राप्त की प्रभावपूर्ण पद्धतियों का उपयोग।

- (5) परामर्श के ऐसे संबंध की स्थापना जिसमें वकील की भूमिका की प्रकृति और सीमाओं के प्रति सम्मान हो; निर्णय लेने के लिए सुसंगत जानकारी एकत्रित करना; लिए जाने वाले निर्णय का विश्लेषण, लिए जाने वाले निर्णय के बारे में पक्षकार को सलाह देना और पक्षकार के निर्णय को सुनिश्चित करना व तैयार करना।
 - (6) बातचीत की तैयारी, बातचीत बैठक का संचालन करना, बातचीत में दूसरे पक्षकार से प्राप्त शर्तों के बारे में अपने पक्षकार को सलाह देना तथा पक्षकार के विनिश्चय को क्रियान्वित करना।
 - (6) पक्षकारों को मुकदमे के विकल्पों तथा वैकल्पिक विवाद समाधान के बारे में परामर्श देना तथा निम्नलिखित का मौलिक ज्ञान:
 - (क) न्यायालय में परीक्षण स्तर पर मुकदमेबाजी।
 - (ख) अपील स्तर पर मुकदमेबाजी।
 - (ग) कार्यपालक विवादों में और कार्यपालक फोरमों में विवादों में वकालत।
 - (घ) अन्य विवाद समाधान फोरमों में कार्यवाहियां। - (8) दक्षतापूर्ण प्रबंध चातुर्य, जैसे, उद्देश्य और सिद्धांत निश्चित करना, यह सुनिश्चित करने के लिए कि समय, प्रयास और साधन दक्षतापूर्वक आवंटित किए जाते हैं, प्रणाली और प्रक्रिया का विकास; यह सुनिश्चित करने के लिए कि कार्य उचित समय पर पूरा हो जाए, प्रणाली विकसित करना; अन्य व्यक्तियों के साथ दक्षतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रणाली या प्रक्रिया विकसित करना; विधि कार्यालय के दक्षतापूर्वक प्रशासन के लिए प्रणाली और प्रक्रिया विकसित करना।
 - (9) नैतिक मानकों की प्रकृति और श्रोत, तथा उन साधनों से, जिनके द्वारा नैतिक मानकों को लागू किया जा सकता है, परिचित रखना, नैतिक विभ्रमों को पहचानने और उनका समाधान करने की प्रक्रिया से परिचय।
- 5.13 मेक क्रेट रिपोर्ट में कहा गया है कि विधि विद्यालयों तथा विधि व्यवसायी संगठनों को विधि व्यवसाय को एक सामान्य उपक्रम के रूप में विकसित करने का उद्देश्य लेकर चलना चाहिए और इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि विधि शिक्षा तथा विधि व्यवसायी की सामर्थ्य तथा भविष्यत वकीलों में विधि व्यवसाय के लिए सक्षमता और उत्तरदायित्व के लिए अपेक्षित दक्षता और मूल्य प्रदान करने के अवधारण भिन्न होते हैं। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि प्रत्येक विधि विद्यालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि विद्यालय किस प्रकार अपने विद्यार्थियों की उन चातुर्यों और मूल्यों को अर्जित करने की प्रक्रिया आरम्भ करने में सर्वोत्तम रूप से सहायता हो सकते हैं जो विधि व्यवसाय के लिए महत्वपूर्ण हैं। विधि विद्यालयों को ऐसे क्षेत्रों में जैसे 'समस्या समाधान', 'तथ्य अन्वेषण', 'आदान-प्रदान संचरण', 'परामर्श', 'बातचीत' तथा 'मुकदमेबाजी' में अनुदेशों का विकास और प्रसार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- 5.14 वान्डेयविल्ट विश्वविद्यालय के डीन प्रो॰ जॉन जे॰ कोसटोनिस के बृहत लेख को, जो कि जरनल आफ लीगल एज्यूकेशन के वाल्यूम 43 (1993, पृष्ठ 157 पर है), अवश्य पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि उसमें विधि शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न महत्वपूर्ण विकासों का उल्लेख किया गया है।
- 5.15 हमारा यह विचार है कि भारतीय विधिविद्या की विधि शिक्षा समिति के सदस्यों को उपरोक्त रिपोर्ट का तथा उसमें तदनन्तर किए गए विभिन्न संशोधनों का, अध्ययन करना चाहिए। जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन में अन्य लेखों में रिपोर्ट की आलोचना की गई है। विधिविद्या परिषद् और विधि अभियान समितियों को वैसी ही अन्य रिपोर्टों को भी देखना चाहिए जो कि यूके, कनाडा और आस्ट्रेलिया की हैं जिससे कि हमारे मानक उन देशों के मानकों से तुलनीय हों और हम अपने 460 से अधिक विधि विद्यालयों में और 102 विश्वविद्यालयों में, जिनमें विधि शिक्षा प्रदान की जाती है, उसी योग्यता के और ज्ञानपूर्ण विद्यार्थी तैयार करने में

समर्थ हों। इसके अतिरिक्त उदारीकरण, प्राइवेटीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में हमें अंतरराष्ट्रीय मानकों के साथ मिलाकर चलना होगा।

5.16 नई अर्थ-व्यवस्था के आने से, अर्थात्, वैश्वीकरण, प्राइवेटीकरण और अविनियमन ने नई-नई चुनौतियां उत्पन्न कर दी हैं। आज संस्कृता, संचार और आवागमन के तकनीकों में मूल-चूल परिवर्तन कर दिए हैं जिनके कारण विधि प्रणाली में भी तत्संबंधी परिवर्तन अपेक्षित हैं। विधि के अत्यधिक विशेषज्ञता के अनेक क्षेत्रों का, जैसे-बौद्धिक सम्पदा, कम्पनी विधि, साइबर विधि, मानव अधिकार, वैकल्पिक विवाद समाधान, अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक संव्यवहार को हमें अपने विधि विश्वविद्यालयों में प्रवेश देना होगा। व्यापार और पूँजी बाजार के प्रसार के कारण, जो कि वैश्वीकरण का परिणाम है, और राज्यों की अपनी परम्परागत भूमिकाओं से प्रत्यावर्तन के कारण, ऐसी नई विधिगत समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं जिनका संबंध उन उपायों से है जिनके द्वारा निर्धनों और कमजोर क्षेत्रों के व्यक्ति आगे अपना बचाव कर सकते हैं। दापिंडक न्याय पर विशेष जोर देना होगा। विधि संस्थाओं और विधि व्यवसाय की मूल प्रकृति ही आज परिवर्तन की धारा में पड़ गई है।

5.17 विधि शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न अंतरविषयों के ज्ञान के क्षेत्रों की सेवा के योग्य होना चाहिए, जैसे विधि और समाज; विधि विज्ञान और तकनीक; विधि अर्थशास्त्र; वाणिज्यशास्त्र और प्रबंधन। इस दृष्टि से कठिनय नये विधि विषयों को एलएलबी^० के प्रथम और द्वितीय वर्ष के पंचवर्षीय कार्यक्रम में प्रवेश दिया जाना चाहिए।

5.18 शिक्षण का उद्देश्य विद्यार्थी में विश्लेषण, चातुर्य, भाषा, प्रारूपण और तर्क चातुर्य का निर्माण करने पर होना चाहिए। शिक्षकों को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि यद्यपि अधिकांश विद्यार्थी वकील के रूप में वृत्ति अपना सकते हैं किन्तु कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जो न्यायाधिक वृत्ति को अथवा विधि परामर्श के रूप में व्यवसाय को अथवा सरकार में विधि अधिकारी के कार्य अथवा शैक्षणिक वृत्ति को अपनाना चाहें।

5.19 वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली, मध्यस्थता, सुलह, माध्यस्थम आदि को अनिवार्य विषय के रूप में रखा जाना चाहिए और बनाए रखा जाना चाहिए।

5.20 पाठ्यक्रम में अनिवार्य अंश बहुत बड़ा नहीं होना चाहिए किन्तु वे विषय जिनकी मुफ्तस्सिल न्यायालय में बहुत आवश्यकता होती है, सिविल और दापिंडक विधि में अनिवार्य होने चाहिए। न्यायालयों में मूल स्तर पर उपयोग में आने वाले अधिकांश विषय अनिवार्य/आवश्यक होने चाहिए। कुछ नये विषयों को भी आवश्यक बनाया जा सकता है। किन्तु इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों को वैकल्पिक विषयों में से चुनने की अधिक से अधिक स्वतंत्रता हो।

5.21 पाठ्यक्रम को न केवल आवश्यक विषयों के आधार पर बल्कि "फ्रेडिट" के आधार पर भी, जैसा कि राष्ट्रीय विधि महाविद्यालय में किया जाता है, पुनः संरचित किया जा सकता है।

5.22 विंअ०आ० तथा भार्कि०प० को तेजी के साथ विधि महाविद्यालय की संबद्धता तथा गुणावगुण अवधारण की प्रक्रिया आरम्भ कर देनी चाहिए ताकि विभिन्न विधि विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा का भाव उदित हो। आज विधि शिक्षा संस्थानों पर गुणावगुण अवधारण तथा संबद्धता की प्रक्रिया कठोरता पूर्वक लागू करने की दशा में अपर्याप्तता है। किसी विधि विद्यालय के कामकाज के मूल्यांकन के विभिन्न सुनात मापदण्ड विंअ०आ० तथा भार्कि०प० द्वारा अधिकथित किए जाने चाहिए और प्रत्येक विधि विद्यालय की वार्षिक रेटिंग होनी चाहिए और इन्टरनेट पर प्रस्तुत की जानी चाहिए जिससे कि भविष्यत् विद्यार्थी सर्वोत्तम विधि विद्यालय में प्रवेश के लिए स्वर्धा कर सकें।

5.23 आगर आवश्यक हो तो यह कार्य विंअ०आ० तथा भार्कि०प० द्वारा व्यावसायिक अधिकरणों की सहायता से पूरा किया जा सकता है जो विधि विद्यालयों की संबद्धता प्रक्रिया से भली भांति परिचित हैं। गुणावगुण अवधारण के बारे में पारदर्शिता भी होनी चाहिए।

5.24 अतः हम विद्यमान धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) के स्थान पर निम्नलिखित प्रतिस्पर्धापित करना चाहते हैं क्योंकि विद्यमान उपबंध में केवल विधि शिक्षा का प्रोन्नयन तथा विश्वविद्यालयों और राज्य विधिज्ञ परिषदों के परामर्श से मानक निर्धारण करने की बात कही गई है:-

(क) खण्ड (ज) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाएगा।

"(ज) विधि शिक्षा का प्रोन्नयन तथा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों के अनुसार, जो कि धारा 10 अब में विनिर्दिष्ट रीति से तैयार की गई है, विधि शिक्षा के मानक अधिकथित करना जो कि निम्नलिखित विषयों के बारे में हों:-

- (i) पाठ्यक्रम, विद्यार्थियों का प्रवेश, अध्यापकों की नियुक्ति और अहंताओं से संबंधित मानकों का निर्धारण।
- (ii) संबद्ध अध्यापकों को वकील संघों के सदस्यों तथा सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से नियुक्ति।
- (iii) विधि शिक्षकों की सेवा की शर्तों का नियत किया जाना।
- (iv) विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात नियत करना।
- (v) विभिन्न शिक्षण पद्धतियों को ग्रहण करने के लिए मार्गनिर्देश अधिकथित करना।
- (vi) विधि विद्यालयों के स्थान, मूल संस्कृता, पुस्तकालय तथा प्रबंध के बारे में शर्तें विनिर्दिष्ट करना।
- (vii) विंअ०आ० द्वारा आरम्भ की गई सम्बद्ध स्कीम, यदि कोई है, के प्रयोजनों के लिए विधि शिक्षा में श्रेष्ठता का प्रोन्नयन।
- (viii) विधि विद्यालयों के लिए शैक्षणिक अध्ययन के विषय के रूप में वैकल्पिक विवाद समाधान का प्रोन्नयन तथा;
- (ix) विधि व्यवसायियों के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान विषय पर सतत शिक्षा का प्रोन्नयन।

अध्याय VI

विद्यार्थियों तथा वकीलों के लिए भी वैकल्पिक विवाद समाधान प्रशिक्षण

6.0 आयोग ने अनुभव किया है कि विधि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए और उन वकीलों के लिए भी जो विधि व्यवसाय में है, वैकल्पिक विवाद, सामाधान विषय पर एक पृथक् अध्याय जोड़ना समीचोन है।

6.1 हाल ही में, संसद् ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 में एक नई धारा 89 अधिनियमित की है जिसमें अपेक्षा की गई है कि प्रत्येक सिविल विवाद में वैकल्पिक विवाद समाधान (वै.वि.स.) की प्रक्रिया को कानूनी तौर पर अपनाया जाए किन्तु साथ ही पक्षकारों को अन्य प्रक्रियाओं में, जैसे, माध्यस्थम, मध्यस्थता, सहमति और लोक अदालतों के माध्यम से समझौता में से किसी एक को चुनने का विकल्प प्रदान किया जाए। ये उपबंध 1 जुलाई, 2001 से लागू हो गए हैं।

6.2 संसद् ने हमारी सिविल प्रक्रिया में इन उपबंधों को सिविल न्यायालयों पर भार को कम करने और पक्षकारों के धन और समय में बचत करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया है, किन्तु दुर्भाग्यवश, वै.वि.स. के विषय से अधिकांश वकील परिचित नहीं हैं। वे न केवल अपारिचित हैं अपितु इन प्रणालियों की प्रभावशीलता के संबंध में उनमें से एक प्रकार का विरोध या अविश्वास है। वकील और न्यायाधीश दोनों ही परम्परावादी होते हैं। वै.वि.स. की बाबत इस प्रकार का परम्परावादी अनुभव हमारे देश के लिए अनोखा नहीं है। विकसित देशों में भी, जैसे अमरीका, यूरोप और कामनबेल्थ में भी जहां लगभग 20 वर्ष से ठीक पूर्व, इन वै.वि.स. प्रणालियों को जब प्रस्तावित किया गया था तब वकीलों और न्यायाधीशों ने उनका विरोध किया था। इस पक्ष के बारे में काफी साहित्य है। किन्तु समय बीतने पर वकीलों और पक्षकारों ने इस संबंध में यह अनुभव किया है और माना है कि इन प्रणालियों की उपयोगिता है। इन देशों में, लगभग 20 वर्षों में, विचारण से पूर्व प्रक्रम पर समझौता हुए सिविल मामलों की संख्या लगभग 90 प्रतिशत तक बढ़ी है और केवल 10 प्रतिशत मामलों में विचारण (ट्राइल) चला है।

6.3 हाल ही में, उच्चतम न्यायालय को वै.वि.स. की प्रणालियों की उपयोगिता के विषय में चर्चा का अवसर मिला था और हम सालेम एडवोकेट बार एसोसिएशन बनाम भारतीय संघ, 2002 (8) स्केल 146 में दिए गए निर्णय का उल्लेख करेंगे। मु. न्या. कृपाल ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 का उल्लेख करते हुए इस निर्णय में (पैरा 9 से 12) निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं:

“यह स्पष्ट है कि धारा 89 को जोड़ने का कारण इस बात का अवसर देना और देखना है कि न्यायालय में यह आवश्यक नहीं कि मामलों का विनिश्चय न्यायालय द्वारा ही किया जाए। कानून और न्यायाधीशों की सीमित संख्या में उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए अब यह आवश्यक हो गया है कि वैकल्पिक विवाद समाधान की प्रक्रिया का आश्रय पक्षकारों की बीच मुकदमों की शीघ्रतम समाप्ति की दृष्टि से लिया जाए। वैकल्पिक विवाद समाधान प्रक्रिया, जिस रूप में वह धारा 89 में परिवर्तित है, माध्यस्थम या सहमति या न्यायिक समझौता की प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत लोक अदालत के माध्यम से समझौता या मध्यस्थता भी आती है। धारा 89 की उपधारा (2) में माध्यस्थम, या सहमति या लोक अदालत के माध्यम से समझौते के संबंध में विभिन्न अधिनियमों का उल्लेख किया गया है किन्तु मध्यस्थता के विषय में, धारा 89(2) (घ) में उपबंध किया गया है कि पक्षकार उस प्रक्रिया का अनुसरण करेंगे जो विहित की जाए। अतः धारा 89 (2) (घ) में यह परिवर्तना है कि मध्यस्थता के विषय में उचित नियम बनाए जाएंगे। विश्व के क्रियान्वयन देशों में जहां वै.वि.स. सफल रहा है, लगभग 90 प्रतिशत से अधिक मामलों में न्यायालय के बाहर समझौता हो जाता है और वहां वाद में पक्षकारों से यह अपेक्षा की जाती है कि उन्हें वै.वि.स. के उस स्वरूप का उल्लेख करना होगा जिसे वे वाद में विचारण के दौरान अपनाना चाहते हैं तो मध्यस्थता तथा सहमति अधिनियम, 1996 के उपबंध लागू होंगे और ऐसा मामला न्यायालय से बाहर चला जाएगा किन्तु यदि सहमति अथवा न्यायिक समझौता अथवा मध्यस्थता की प्रक्रिया को विवाद के

समाधान के लिए अपनाया जाता है तो मामला स्वतः न्यायिक प्रक्रिया के बाहर नहीं जाएगा। इस सब का अभिप्राय यह है कि पक्षकारों के बीच एक सहमति समझौते के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए किन्तु यदि सहमति अथवा मध्यस्थता अथवा न्यायिक समझौता, प्रयत्न करने के उपरांत भी, संभव नहीं है तो ऐसे मामले में अंततोगत्वा विचारण होगा।”

धारा 89 एक नया उपबंध है और विवाद के निवारण के लिए माध्यस्थम अथवा सहमति को भी एक पद्धति के रूप में अपनाया गया है किन्तु इससे न्यायालय पर भार वास्तव में कम नहीं हुआ है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे नियम आदि तैयार करने होंगे जो उस रीत के बारे में हों जिसपर धारा 89 और अन्य उपबंध, जिन्हें संशोधनों के रूप में पुरस्थापित किया गया है, प्रवर्तित किए जा सकें। सभी परामर्शी सहमत हैं कि इस प्रयोजन के लिए यह उचित होगा कि एक समिति का गठन किया जाए जो यह सुनिश्चित करे कि संशोधनों को प्रभावी किया जाए और उससे न्याय प्रदान करने में परिणामस्वरूप गति प्राप्त हो।

यह समिति इस बात पर विचार कर सकती है कि एक आदर्श प्रबंधन फार्मूला तथा ऐसे नियम और विनियम तैयार किए जाएं जिनका अनुसरण धारा 89 में उल्लिखित वै.वि.स. का आश्रय लेने के लिए किया जाए। इस प्रकार से तैयार किए जाने वाले आदर्श नियमों को संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा ही धारा 89 (2) (घ) को प्रभावी करने के उद्देश्य से, उपनात्रणों सहित अथवा उनके बिना, अपनाया जा सकता है। उक्त निर्णय की पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि प्रत्येक मामले का ऐसी किसी प्रक्रिया से अनिवार्य रूप से गुजरना होगा जिसमें वै.वि.स. की प्रक्रियाओं द्वारा निवारण का प्रयास किया जाए।

6.4 अतः आयोग का यह मत है कि वै.वि.स. प्रक्रियाओं को सभी विधि विद्यालयों में एक अनिवार्य विषय के रूप में रखा जाना चाहिए और जारी रखा जाना चाहिए तथा इस बात की तुरंत आवश्यकता है कि न्यायालय में विधि व्यवसाय कर रहे वकीलों को भी इस वै.वि.स. प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण दिया जाए।

अधिनिर्णय अथवा समझौते के लिए न्यायालयों को केन्द्रों के रूप में मान्यता प्रदान करना

6.5 लम्बे समय से और लोकप्रिय सिद्धांत के रूप में न्यायालय को केवल एक ऐसे स्थान के रूप में मान्यता प्राप्त है जहां विवादों का अधिनिर्णय राज्य द्वारा स्थापित सक्षम न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है किन्तु इस पुराने सिद्धांतों में अब पूर्ण रूप से परिवर्तन हो चुका है। प्रो. फ्रेंक ई. सान्डर के अनुसार आज न्यायालयों की एक अलग हैसियत है। आज न्यायालय वह स्थान भी है जहां समझौते को प्रोत्साहित किया जाता है। प्रो. सान्डर की कल्पना यह थी कि —

“न्यायालय मात्र एक न्यायकक्ष नहीं है अपितु विवाद के समाधान का केन्द्र भी है जहां शिकायतकर्ता को, विश्लेषण करने वाले किसी लिपिक की सहायता से, किसी विशिष्ट प्रकार के मामले में सर्वाधिक उपयुक्त प्रक्रिया (अथवा एक से अधिक प्रक्रियाओं) की ओर मार्ग निर्देशित किया जाए।”

(फ्रैंक ई.ए. सान्डर, “वैराइटीज आफ डिस्ट्रिक्ट प्रोसेसिंग”, 707 आर.डी. 111, जिसे गोल्डवर्ग, सान्डर तथा रोजर्स ने तीसरे संस्करण, 1999 में, डिस्ट्रिक्ट रिजोलियूशन में उद्घृत किया है) अतः विधि विद्यार्थियों, वकील संघों और न्यायाधीशों को इस बात पर विचार करना चाहिए कि न्यायालय में विधि व्यवसाय अब केवल विधि व्यवसाय में दक्षता को विकसित करने तक सीमित नहीं रह गया है अपितु इसका विस्तार वै.वि.स. प्रक्रियाओं में दक्षता तक है।

6.6 पारस्परिक विरोध प्रणाली के संदर्भ में वकीलों का यह विचार है कि न्यायालय झगड़े या कानूनी लड़ाई के स्थान हैं। विधि विद्यार्थियों और वकीलों को न केवल अपने पक्षकारों की ओर से बोलने का बल्कि विरोधी के विचारों को सुनने का भी तथा यह देखने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि क्या कोई ऐसा मार्ग निकल सकता है जिससे पक्षकारों के समय और धन की बचत हो और परिणामतः न्यायालयों के समय की भी बचत हो। यदि कुछ मामलों में समझौता हो जाता है तो न्यायालय अधिक उलझे हुए अथवा महत्वपूर्ण मामलों में अथवा दापिङ्क अपराधों से संबंधित मामलों में और अधिक गति से कार्य कर सकते हैं जिन मामलों का न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय आवश्यक है।

यदि वै.वि.स. की प्रक्रियाओं के संबंध में प्रशिक्षण का आरम्भ विधि विद्यालयों से ही हो जाता है तो वह व्यक्ति जिसे, इस प्रकार का प्रशिक्षण या दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वै.वि.स. पद्धतियों द्वारा निवारण की प्रणाली का विरोध नहीं करेगा। आज जो संस्कृति विद्यमान है उससे भिन्न संस्कृति का विकास करना होगा और यह कार्य

विश्वविद्यालयों के स्तर से ही तुरंत आरम्भ कर देना चाहिए। अब, जबकि धारा 89 आज्ञापक है, तब प्रत्येक मामले को वैविषिणी प्रणाली से गुजरना होगा। वैविषिणी प्रणालियों को विधि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य विषय बनाना चाहिए।

किन्तु आज उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वकील संघों के वकील वैविषिणी प्रणालियों से संबंधित तकनीकों से अथवा इस प्रणाली के मूल नियमों और नैतिक पक्ष से पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हैं, जैसे, गोपनीयता से संबंधित नियम आदि, किन्तु उन्हें सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के आज्ञापक होने के कारण वैविषिणी प्रक्रियाओं में भाग लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है भले ही उन्हें विद्यालय में अथवा वकील संघ में इस प्रकार की वैविषिणी प्रक्रियाओं के विषय में कोई प्रशिक्षण न मिला हो।

6.7 वैविषिणी प्रणालियों के विषय पर जो बहुत साहित्य है उसे देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विषय में वकीलों को पर्याप्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है। उन्हें सर्वप्रथम इस खेल के मानदंडों और नियमों को सीखना होगा। इस विषय पर अनेक मानक पुस्तकें हैं। बहुत साहित्य भी उपलब्ध है जिस तक इन्टरनेट के माध्यम से देश के दूर दराज भागों में भी तुरंत पहुंचा जा सकता है।

6.8 वैविषिणी प्रक्रियाओं से वकीलों को परिचित कराने के उद्देश्य से यह अत्यावश्यक है कि उन्हें वैविषिणी प्रणालियों में 'युद्ध स्तर' पर प्रशिक्षित किया जाए। भाविष्यत तथा विधिज्ञ संगमों और भारतीय विधि संस्थान तथा उसकी शाखाओं और अन्य मान्यता प्राप्त संगठनों को, जैसे आईसीएडी आर०, तुरंत वैविषिणी प्रणालियों के प्रशिक्षण का कार्य आरंभ कर देना चाहिए। (उच्च न्यायालय और जिला न्यायालय को न्यायिक अधिकारियों के लिए वैविषिणी प्रणाली का प्रशिक्षण आरंभ कर देना चाहिए)।

6.9 सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के आधार पर हमने 1.7.2002 से अपनी सिविल विधि में एक नई प्रणाली का आरंभ कर दिया है जबकि वकील संघ उसे ग्रहण करने या उसके मूल्य को पहचानने में अभी समर्थ नहीं है; और उन्हें क्रियान्वित करना तो दूर की बात है। इस विषय पर जो पाठ्यपुस्तकें हैं उनमें मध्यस्थता, सहमति, विचारिमर्श, संभज्ञाता और माध्यस्थम में से प्रत्येक पर सैकड़ों पृष्ठ लिखे गए हैं जिनके बारे में हमारे वकील पूरी तरह परिचित नहीं हैं।

6.10 सर्वप्रथम हर एक को यह सीखना होगा कि इन प्रक्रियाओं में से कौन सी किसी विशेष मामले में उपयुक्त है और यदि है तो उसे किस प्रकार से अपनाया जाए।

स्थिति की उपरोक्त अत्यावश्यकता की पृष्ठभूमि में ही विधि आयोग ने इस रिपोर्ट में वैविषिणी के विषय पर बल देने के लिए प्रस्ताव किया है कि— (1) विधि विद्यार्थियों तथा (2) वकीलों को, जो विधि व्यवसाय में हैं, वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

6.11 ऐसा प्रतीत होता है कि भाविष्यत ने पहले से वैविषिणी को एक अनिवार्य विषय मान लिया है। (विष्यांआ० के आदर्श पाठ्यक्रम 2001 का पृष्ठ 92 देखिए)। यह भी प्रतीत होता है कि विष्यांआ० पाठ्यक्रम रिपोर्ट 2001 में उक्त सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया है जैसा कि रिपोर्ट के उसी पैरा से स्पष्ट है।

अतः हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 की उपधारा (1) के खंड (ज) में संशोधन किया जाए जिससे कि भाविष्यत वैविषिणी को विधि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक अध्ययन के एक विषय के रूप में प्रोन्नत करने में तथा विधि व्यवसायियों के लिए वैकल्पिक विवाद समझौता विषय पर निरन्तर शिक्षा को प्रोन्नत करने में समर्थ हो सके।

हम यह सिफारिश भी करते हैं कि उच्चतम न्यायालय, भाविष्यत, राज्य विधि संस्थान, आई सी ए डी आर तथा ऐसे ही अन्य संगठनों को वकीलों के लिए तथा न्यायिक अधिकारियों के लिए वैविषिणी प्रशिक्षण कार्यक्रम आरंभ करने चाहिए। यह प्रशिक्षण संक्षिप्त अवधि का, जैसे एक सप्ताह का अथवा एक मास के प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम के रूप में अथवा छःमास/एक वर्ष के डिप्लोमा पाठ्यक्रम के रूप में हो सकता है।

अध्याय VII

वकीलों और न्यायाधीशों में से सम्बद्ध शिक्षक

7.0 मेक क्रेट रिपोर्ट की सिफारिशों में से एक महत्वपूर्ण सिफारिश का संबंध न केवल एक पूर्णकालिक संकाय की आवश्यकता से है बल्कि 'व्यावसायिक कौशल में कृशल और अनुभवी विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों तथा न्यायाधीशों का समुचित उपयोग करने' से भी है। इस सिफारिश का संबंध विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों और सेवानिवृत्त न्यायाधीशों में से अंशकालिक सम्बद्ध शिक्षकों से मार्ग दर्शन प्राप्त करने से भी है।

रिपोर्ट में 'प्रशिक्षित कार्यक्रम' का भी उल्लेख है।

7.1 अति प्राचीन 'लेक्चर' प्रणाली, लांग डेल की 'केस प्रणाली' और प्रो० लेक्वेलीन तथा न्यायाधीश जेरोमी फँक की 'समस्या प्रणाली' को लांधकर हम आज विद्यार्थियों के लिए प्रशिक्षण की एक नई प्रणाली तक आ पहुंचे हैं जो संकाय की सहायता से तथा विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों तथा न्यायाधीशों के 'सम्बद्ध संकाय' की सहायता से विभिन्न 'कौशलों और मूल्यों' में विद्यार्थियों के प्रशिक्षण के बारे में है जिसका समर्थन मेक क्रेट रिपोर्ट में किया गया है।

7.2 आन्द्रे थेमस स्टारकिस तथा अन्य ने जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन (1998) के पृष्ठ 231 पर 'मीटिंग द मेक क्रेट आवजेकटिव्स (एफोर्डेवली) मेसाच्यूसेट्स स्कूल' (आग 48) में संकाय, वकीलों और न्यायाधीशों के प्रयोजन के बारे में निम्नलिखित रूप में उल्लेख किया है (पृष्ठ 231):

"मेक क्रेट रिपोर्ट ने विधि शिक्षा के परंपरावादियों के दृष्टिकोण को चुनौती दी। यह रिपोर्ट इस सिद्धांत को लेकर बढ़ी कि विधि विद्यार्थियों को विधि व्यवसाय के लिए तैयार करना विधि विद्यालयों का कारोबार है..... मेसाच्यूसेट्स ला स्कूल ने इस उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है। इसकी कुंजी विधि व्यवसायियों और न्यायाधीशों द्वारा शिक्षा प्रदान करने पर बहुत बल देने पर है, अर्थात्, एक छोटे से पूर्णकालिक निकाय द्वारा शिक्षा देना जो निकाय सम्बद्ध शिक्षकों के एक स्थायी समूह को शिक्षण के प्रति न केवल सहभागी आस्था की शिक्षा प्रदान करता है बल्कि मार्गदर्शन भी करता है...."।

रिपोर्ट के पृष्ठ 232 पर उल्लेख है:

"लगभग दस वर्ष पूर्व मेसाच्यूसेट्स की स्थापना करने वाले संकाय सदस्यों के सिवाए, एक को छोड़कर, पूर्णकालिक संकाय के सभी सदस्यों को विद्यालय के 'सम्बद्धों' की रैंक में से नियुक्त किया गया था। इस समय प्रत्येक वर्ष पाठ्यक्रम की कुल अवधि में लगभग आधी अवधि का शिक्षण विधि व्यवसाय कर रहे वकीलों तथा न्यायाधीशों की श्रेणी में से लिए गए सम्बद्धों द्वारा प्रदान किया जाता है।"

7.3 विधि विद्यालयों में शिक्षण का जहां तक संबंध है उसमें वकीलों और न्यायाधीशों के अत्याधिक सहयोग के आधार के बारे में निम्नलिखित उल्लेख किया गया है:-

"विद्यालय का मत है कि यद्यपि अध्यापन के लिए वकालत या न्याय निर्णय से भिन्न कौशल की आवश्यकता होती है किंतु वे लोग, जिन्हें सुरक्षित अनुभव है, कुल मिलाकर उन व्यक्तियों से बेहतर शिक्षक होते हैं जिनका ज्ञान अधिकांशतः शैक्षणिक होता है।"

7.4 मेसाच्यूसेट्स का मत है कि 'सम्बद्धों पर भरोसा' पाठ्यक्रम में गहराई और लाभ, अपेक्षाकृत कम खर्च पर, उपलब्ध कराता है। पूर्णकालिक संकाय रखने से जिनका ज्ञान और अनुभव (वकीलों और न्यायाधीशों के रूप में) उतना ही होता है, बहुत अधिक खर्च होगा। उनका कथन है कि-

“बर्गाकार खूटी जैसे संकाय को गोल छिद्राकार पाठ्यक्रमों में फिट करने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

7.5 यूनाइटेड स्टेट्स के अनेक विधि विद्यालयों में, 20 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक अध्यापन अवधि सबद्धों, अर्थात्, विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों और न्यायाधीशों को आर्बांट की जाती है।

ऐरीजोना विश्वविद्यालय के प्रौद्योगिक जॉनाथन रोज ने जर्नल ऑफ लीगल एज्यूकेशन (भाग 44) (1994) 548 (पृष्ठ 559 पर) ‘द मेक क्रेट रिपोर्ट रिस्टेटमेंट आफ लीगल एज्यूकेशन’ शीर्षक के लेख में कहा है:-

“रिपोर्ट में इस बात को माना गया है कि विधि विद्यालय कौशल की उस्तादी वकीलों की सहायता के बिना पैदा नहीं कर सकते।”

उन्होंने पृष्ठ 564 पर पुनःउल्लेख किया है कि:-

“अनेक शिक्षाविदों में, भले ही उनमें सक्षमता हो, अपने व्यावसायिक जीवन के एक बड़े हिस्से को कौशल प्रशिक्षण के प्रति समर्पित करने की दिलचस्पी का अभाव दिखाई देता है। इसका आंशिक स्पष्टीकरण यह है कि उनमें पारम्परिक शैक्षणिक भानदंडों को अपनाने और उनके प्रोन्नयन तथा वृत्तिक संस्कृति के प्रति लगाव है।”

7.6 डोनाल्ड जॉन वीडमेन ने “द क्राइसिस आफ लीगल एज्यूकेशन, ए वेकअप काल फार फेकल्टी” (भाग 47) (1997), जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन के अपने लेख में पृष्ठ 92 पर कहा है:-

“संकाय विद्वता के उपर्युक्त सम्मिश्रण के विषय में तथा इस विषय में कि उसमें से कितना केवल प्रायिक शिक्षण के उद्देश्य से है, अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आते हैं।”

और उक्त लेख में ग्राहम सी. लिली के लेख “ला स्कूल्स विद आडट लाइर्स विन्डस आफ चेन्ज इन लीगल एज्यूकेशन” 81 वा ल रिव्यू पृष्ठ 1921 (1995) तथा हेरी टी एडवर्ड के लेख “द ग्रोइंग डिसजंक्शन विट्बीन लीगल एज्यूकेशन एण्ड द लीगल प्रोफेशन” 91 मिशन ला रिव्यू 34 (1942) को उद्धृत किया है और पृष्ठ 103 पर कहा है कि:-

“शैक्षणिक वकीलों और विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों के बीच अत्यधिक अंतर के कारण यह आवश्यक है कि विधि संकायों और विधि व्यवसाय को मिलाने के लिए एक सकारात्मक कार्यक्रम होना चाहिए। अनेकों विद्यालयों में न्यायाधीशों तथा विधि व्यवसाय करने वाले अटर्नीयों का सम्बद्ध शिक्षकों के रूप में या मेहमान व्याख्याताओं और विद्यार्थियों के लिए परामर्शियों के रूप में बहुत बड़ी संख्या में उपयोग किया जाता है। अनेक विधि विद्यालयों में समस्या यह है कि संकाय को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। विद्यालयों को वकीलों, न्यायाधीशों और सरकारी अधिकरणों का उपयोग आवासीय प्रोफेसरों के रूप में, संकाय का उपयोग भाषणकर्ताओं के रूप में, संकाय टीम का उपयोग अध्यापन कार्य में, न्यायाधीशों और वकीलों को साथ में जोड़कर करना चाहिए।”

तथा इस बात पर क्षोभ प्रकट किया है कि विधि शिक्षाविदों और विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों के बीच बहुत कम संवाद होता है। उनका विचार है कि इस बात की आवश्यकता है कि संकाय न्यायाधीशों और वकीलों में भी रुचि दर्शाए।

7.7 प्रौद्योगिक डिव्यू मायर ने “टीर्चिंग गुड एण्ड टीर्चिंग वैल: इन्टीग्रेटिंग बेल्यूज विद थौरी एण्ड प्रेक्टिस” भाग 47 (1997), जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन में अपने लेख पृष्ठ 401 (पृष्ठ 407 पर) कहा है कि-

“सम्बद्ध शिक्षक समस्याओं के कौशल पक्ष की शिक्षा प्रदान करते हैं तथा साप्ताहिक लिखित कार्य के विषय में टिप्पणियां करते हैं। हम सम्बद्ध संकाय का चयन विधि व्यवसाय करने वाले विभिन्न व्यक्तियों में से-नगरीय, उप नगरीय, बाहरी तथा भीतरी विधि सलाहकारों में से, करते हैं.....”

हमारा संयुक्त संकाय अपरिहार्य है। वे कार्यक्रम में अपने विधि व्यवसाय से ताजा और सुसंगत उदाहरण देकर सच्चाई पैदा कर लेते हैं। जब वे विद्यार्थियों को बताते हैं कि ऐसी बातें बास्तव में घटी हैं और वकीलों ने

बास्तव में उनसे निबटा है तो समस्याओं के संबंध में विश्वसनीयता उत्पन्न होती है। उनकी उपस्थिति, संकाय के साथ स्पष्ट और सजीव भागीदारी के कारण, विधि विद्यालय तथा विधि व्यवसाय के बीच में जो “दूरी” है उसे प्रभावी ढंग से जोड़ने के लिए सेतु का कार्य करते हैं जो ऐसी किसी अन्य प्रणाली से संभव नहीं है जिसका बास्ता हमसे पड़ा है।

सम्बद्ध शिक्षक विहित पाठ्यक्रम का अनुसरण करते हैं जिसमें कौशल विकास के बारे में निश्चित पाठ्यक्रम तथा साप्ताहिक लिखित कार्य होते हैं। वे कक्षा समय का अधिकांश भाग विद्यार्थियों के कार्य सम्पादन के बारे में टिप्पणी करने पर और व्यावहारिक परामर्श देने पर लगाते हैं। हम यह व्यवस्था करते हैं कि सम्बद्धों को जेनल इन्स्टीट्यूट आफ एडवोकेसी की फीड बेक प्रणाली के बारे में प्रशिक्षित किया जाए जो कि एक चार भागों का फार्मूला है जो कार्य सम्पादन के पहलू पर तथा उसमें सुधार करने के लिए उदाहरण देने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं.....।

पूर्णकालिक अध्यापक नियमित रूप से कौशल विभागों पर ध्यान देते हैं जिससे कि विद्यार्थियों और सम्बद्धों, दोनों, के कार्य सम्पादन पर ध्यान दिया जा सके। प्रत्येक सेमेस्टर में सभी विद्यार्थी सम्बद्ध संकाय का मूल्यांकन करते हैं और इसके लिए वे एक फार्म का प्रयोग करते हैं जो कि सम्बद्धों के पाठ्यक्रम शैक्षिक कौशल के मूल्यांकन के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया है।

7.8 प्रौद्योगिक जान्स मेरिट ने अपने लेख ‘न्यू कोर्स आफरिंग इन द अपर लेवल करीक्यूलम-रिपोर्ट आफ एन ए एल एस सर्वें’ (भाग 47) (1997) जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन के पृष्ठ 524 (पृष्ठ 546 पर) कहा है कि-

“सम्बद्धों ने मुकदमेबाजी की बाबत पर्याप्त उच्चतर प्रतिशत तक शिक्षा दी-संबंधित पाठ्यक्रम (42.2), नये पाठ्यक्रम (31.1)। ऐसा प्रतीत होता है कि परम्परागत सावधि संकाय ने अन्य नये पाठ्यक्रम (55.9 प्रतिशत) की अपेक्षा मुकदमेबाजी की बाबत कम प्रतिशत (48.6 प्रतिशत) तक शिक्षा दी।”

तथा पृष्ठ 550 पर उनका कहना है कि:-

“सम्बद्धों ने वकालत के पाठ्यक्रम की बाबत विशेष रूप से उच्च प्रतिशत तक (53.2 प्रतिशत) शिक्षा दी। दूसरी ओर परम्परागत सावधि संकाय ने वकालत के पाठ्यक्रमों की शिक्षा (56 प्रतिशत) अन्य नये विषयों की अपेक्षा अत्यन्त कम (43 प्रतिशत) प्रदान की।”

7.9 विष्वात शिक्षाविदों द्वारा व्यक्त किए गए उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि यदि पाठ्यक्रम में ‘विधि कौशल’ के विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आस्थ करने का प्रस्ताव किया जाता है तो यह आवश्यक होगा कि “वकीलों और न्यायाधीशों से युक्त ‘सम्बद्ध संकाय’ को अध्यापन विभाग में अंशकालिक आधार पर स्थान प्रदान किया जाए।”

7.10 जैसी कि इस समय स्थिति है, ऐसी कोई प्रणाली विद्यमान प्रतीत नहीं होती। गत अनेक दशकों में ऐसी प्रणाली थी कि विष्वात वकील सांयकालीन या प्रातःकालीन विधि विद्यालयों में अंशकालिक रूप से कक्षाएं लेते थे अथवा दिन के समय भी नियमित कक्षाएं लेते थे। वास्तव में, बहुत विष्वात वकीलों ने, जो आगे चलकर उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश बन गए अथवा उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में विशेष अधिकरण बन गए, अंशकालिक व्याख्याताओं के रूप में महान सेवा प्रदान की है। यह प्रणाली प्रातःकालीन अथवा सांयकालीन विद्यालयों तथा अंशकालित पाठ्यक्रमों की समाप्ति के साथ-साथ ही, व्यवहार में, समाप्त हो गई है।

7.11 यूएसए के अनुभव को ध्यान में रखते हुए तथा विधि विद्यालयों में जो बास्तविकता है उसे ध्यान में रखते हुए, यदि पाठ्यक्रम में ‘विधि कौशल’ विषय को प्रारम्भ किया जाता है तो भारतीय के लिए इस विकल्प पर विचार करना गंभीर रूप से आवश्यक हो जाएगा और उसे इस विषय पर पुनः विचार करना होगा कि वकीलों और सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को विधि कौशल से संबंधित अध्यापन के लिए सम्बद्ध निकाय के भाग के रूप में सम्मिलित करने की अनुभति दी जाए। आयोग का यह मत है कि ‘व्यावहारिक कौशल’ को पाठ्यक्रम के भाग के रूप में अध्यापन के लिए वकीलों और सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के उपयोग की प्रणाली को पुनः लागू करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

7.12 अतः, हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7(1) के खण्ड (ज) में संशोधन करके भाष्विष्णु को सम्बद्ध अध्यापकों की नियुक्ति की प्रक्रिया और शर्तें नियत करने के लिए समर्थ बनाया जाए और ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति वकील संघों तथा सेवानिवृत न्यायाधीशों में से की जाए। यह कार्य राज्य विधिज्ञ परिषद् तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति एवं विभिन्न विधिमान्यता प्रदान की विधि शिक्षा समिति के परामर्श से करना होगा।

अध्याय VIII

अनुज्ञाएं तथा निरीक्षण

अनुज्ञाएं:

8.0 विधि शिक्षा के मानक बनाए रखने का प्रश्न 460 से अधिक विधि विद्यालयों और 102 विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध है। इनमें से कुछ विधि विद्यालय विश्वविद्यालय के विद्यालय हैं और कुछ अन्य किसी न किसी विश्वविद्यालय से संलग्न विधि विद्यालय या विधि महाविद्यालय हैं। दुर्भाग्यवश, भाष्विष्णु ने न केवल राज्यों में और जिला मुख्यालयों में बल्कि कुछ राज्यों के गैर जिला मुख्यालयों में भी विधि विद्यालय खोलने की अनुमति या अनुशिष्टा दी है। कुछ नगरों में 20 से अधिक विधि महाविद्यालय हैं और कुछ राज्यों में 40 या उससे अधिक तक विधि महाविद्यालय हैं। ऐसा एक दशक पूर्व किया गया था। इससे विधि शिक्षा की गुणवत्ता गंभीर रूप से प्रभावित हुई।

8.1 भाष्विष्णु द्वारा, इस बात पर विचार किए बिना कि महाविद्यालय आवश्यक मूल ढांचा प्रदान करने में समर्थ होंगे या नहीं और सक्षम कर्मचारी और अध्यापक उपलब्ध होंगे या नहीं, अनेक स्थानों पर बड़ी संख्या में विधि महाविद्यालय प्रारम्भ करने की अनुशिष्टा प्रदान कर दी थी। ऐसे महाविद्यालयों की स्थापना के पश्चात् जब भाष्विष्णु ने विभिन्न मानक या नियम निर्धारित किए तब अनेकों महाविद्यालय ऐसे मानकों को पूरा करने में असमर्थ रहे। अतः यह स्पष्ट है कि अनुशिष्टा प्रदान करते समय बहुत ध्यान देने की आवश्यकता है। आज तब तक चिकित्सा महाविद्यालय की मंजूरी नहीं दी जाती जब तक कि मूल ढांचे की विभिन्न मर्दें-जिनके अंतर्गत 300 बिस्तरों के अस्पतालों की सुविधा भी है उपलब्ध न हो। हम यह नहीं कहना चाहते कि चिकित्सा महाविद्यालय और विधि महाविद्यालय की स्थापना की शर्तें तुलनीय हैं किन्तु फिर भी विधि महाविद्यालय की अनुमति प्रदान करने के विषय में यदि यह आशय है कि अच्छे विद्यार्थी पैदा हों जो वकील संघों में आगे चलकर वकीन बन सकेंगे या न्यायाधीश बन सकेंगे, भाष्विष्णु को प्रारम्भ में ही इस विषय में पूरा ध्यान देना होगा।

8.2 यदि अनुमति प्रदान करते समय ध्यान नहीं दिया जाएगा तो अनेक और असीमित निरीक्षण करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा जिसके परिणामस्वरूप विधि विश्वविद्यालय को न केवल अनावश्यक व्यय ही करना होगा अपितु विद्यार्थियों और कर्मचारियों में अनिश्चितता भी उत्पन्न हो जाएगा। बार-बार निरीक्षणों के कारण प्रारम्भिक स्थापना के प्रक्रम पर तथा तदन्तर भी बार-बार निरीक्षणों के कारण व्यय होगा।

भारत में, हमें बड़ी संख्या में विधि विद्यालयों की आवश्यकता है किन्तु उन्हें ऐसे विद्यार्थी तैयार करने चाहिए जिन्होंने पर्याप्त गुणवत्ता पूर्ण विधि शिक्षा प्राप्त की हो। निःसंदेह गत दस वर्षों में एक बड़ी संख्या में विद्यालयों को प्रदान की गई अनुमतियों को वापिस लिया गया है। ऐसा क्यों हुआ? इन विद्यालयों के बंद होने से उन विद्यार्थियों को, जिन्होंने महाविद्यालय में प्रवेश लिया था, बहुत परेशानी और असुविधा हुई है। इनमें से अनेक विद्यार्थियों को दूसरे महाविद्यालय में प्रवेश देना पड़ा। स्पष्ट है कि प्रारम्भिक निरीक्षण संतोषप्रद नहीं थे।

8.3.1 भारतीय विधिज्ञ परिषद् से संलग्नता के लिए अनुमति प्रदान करने की और संलग्नता की अनुमति वापिस लेने की शक्ति उक्त परिषद् द्वारा बनाए गए नियमों में दी गई है। हमारे विचार में ये नियम निश्चित रूप से अधिनियम के विपरीत है। किन्तु आयोग को यह प्रतीत हुआ कि अधिनियम में भा० वि० प० की इस शक्ति के विषय में, जो ऐसे विधि पाठ्यक्रम आरम्भ करने की पूर्व अनुमति प्रदान करने की बाबत है जिन पाठ्यक्रमों के परिणामस्वरूप अधिकारियों को नामांकन किया जाता है तथा ऐसी अनुमति को वापिस लेने के विषय में अधिनियम में ही अधिकारियों उपबंध किया जाना चाहिए। अनुमति प्रदान करने और ऐसी अनुमति को वापिस लेने की इस शक्ति का भाष्विष्णु द्वारा प्रयोग विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के परामर्श से किया जाना चाहिए। यह प्रस्ताव है कि इस विषय को धारा 7(1) में डाल दिया जाए क्योंकि इस धारा का संबंध भाष्विष्णु की शक्तियों से है। आयोग का मत है कि इन शक्तियों का जो प्रयोग किया जा चुका है वह विभिन्न सिद्धांतों के आधार पर, जिसके अंतर्गत 'वास्तविकता' का सिद्धांत भी है, न्यायोचित होगा। किन्तु आयोग का अनुभव है कि अत्याधिक सावधानी के रूप में, एक पृथक् उपबंध जोड़कर भाष्विष्णु के उन सभी पूर्व कृत्यों को, जो कि संलग्नता की अनुमति प्रदान करने या अनुमति वापिस लेने से संबंधित हैं, विधिमान्यता प्रदान की जाए। यह भी

प्रस्तावित है कि कोई भी विधि महाविद्यालय या किसी विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि अध्ययन का कोई ऐसा पाठ्यक्रम उपलब्ध न कराएं अथवा प्रदान न करें जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को अधिकारित किया जा सके तथा किसी भी विद्यार्थी को भाविष्यत् से इस बाबत पूर्व अनुमति प्रदान किए बिना किसी ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए। यह भी प्रस्तावित है कि किसी भी विधि महाविद्यालय को अथवा किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग को या किसी अन्य संस्था को ऐसे पाठ्यक्रम को और आगे चलाने नहीं दिया जाना चाहिए यदि भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने पहले प्रदान की गई अनुमति वापिस ले ली हो। हम यह प्रस्ताव भी करते हैं कि उपरोक्त अपेक्षा का उल्लंघन करते हुए यदि किसी व्यक्ति से प्रवेश के लिए कोई फीस या रकम, किसी भी रूप में, संग्रह की गई हो तो वह वापिस कर दी जाए। तदनुसार, उपरोक्त बातों को प्रस्तावित धारा 7 के में सम्पादित करने का प्रस्ताव किया जाता है। (विद्यमान धारा 7 के धारा 7 घ के रूप में पुनः संख्याक्रित किया जाना चाहिए।)

8.3.2 आयोग ने यह अनुभव भी किया है कि भाविष्यत् से पूर्व अनुमति प्राप्त करने की अपेक्षा की आज्ञापक प्रकृति पर बल देने के लिए और इस अपेक्षा का उल्लंघन रोकने के लिए यह आवश्यक है कि इस आशय का एक उपबंध जोड़ा जाए कि यदि कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत कोई संस्था या निकाय, सोसायटी, न्यास अथवा कम्पनी भी आती है, पूर्व अनुमति के बिना कोई ऐसा विधि पाठ्यक्रम आरम्भ करता है जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति का अधिकारित कोई रूप में नामांकन किया जा सकता है, और तब जब भाविष्यत् ने अनुमति वापिस ले ली हो, ऐसे पाठ्यक्रम को जारी रखता है तो यह एक अपराध होगा। इस प्रयोजन के लिए, धारा 45क अंतःस्थापित करने का प्रस्ताव है ताकि ऐसे उल्लंघन को एक दण्डनीय अपराध माना जाए।

निरीक्षण:

8.4 अधिनियम की धारा 7(1)(झ) के अनुसार भा० वि० प० उन विश्वविद्यालयों का परिभ्रमण और निरीक्षण कर सकती है जिनकी विधि उपाधि को विधि स्नातकों का वकीलों के रूप में नामांकन करने के प्रयोजन के लिए मान्यता दी जा सकती है। भाविष्यत् राज्य विष्यत् को भी विश्वविद्यालय का परिभ्रमण और निरीक्षण करने का निदेश दे सकती है। धारा 6(1) (छछ) के अनुसार, राज्य विधिज्ञ परिषद् भी भाविष्यत् के निर्देशों के अनुसार विश्वविद्यालय का परिभ्रमण और निरीक्षण कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त, भाविष्यत् नियमों के भाग IV के अनुभाग के नियम 8 में निरीक्षण का उल्लेख है। हाल ही में, निरीक्षण, प्रत्युत्तर, रिपोर्ट और रिपोर्ट पर पुनः प्रत्युत्तर के लिए प्रारूप फार्म तैयार किए गए हैं रिपोर्ट के आधार पर विश्वविद्यालय द्वारा संलग्नता की समाप्ति की सिफारिश करने की प्रक्रिया का भी उल्लेख किया गया है।

8.5 इसमें कोई संदेह नहीं है कि निरीक्षण आवश्यक है। अनेक बार निरीक्षणों के अच्छे परिणाम निकले हैं और यह सत्य है कि ऐसे कुछ महाविद्यालयों की, जो कि खराब थे, निरीक्षण के पश्चात् मान्यता समाप्त की जा चुकी है कि किन्तु फिर भी निरीक्षण की प्रक्रिया में संशोधन करना होगा। दूसरी ओर, कुछ महाविद्यालयों की शिकायत है कि यद्यपि उन्होंने संलग्नता के लिए आवश्यक सभी अपेक्षाओं की पूर्ति कर दी है किन्तु फिर भी उन्हें स्थाई मान्यता प्रदान नहीं की गई है और केवल एक वर्ष के लिए मान्यता प्रदान की गई है और प्रत्येक वर्ष निरीक्षण किया जाता है और कुछ मामलों में तो वर्ष में एक से अधिक बार भी निरीक्षण किया जाता है और प्रबंध तंत्र से हर बार निरीक्षण फीस के रूप में कम से कम 50,000 रुपए जमा करने के लिए कहा जाता है जिससे कि कमटा के सदस्य निरीक्षण नहीं कर सकते। ऐसे शिकायतें भी हैं कि निरीक्षण करने वाली टीम का व्यय बहुत अधिक होता जा रहा है, विशेषरूप से तब जब निरीक्षक टीम मंहगे होतलों में उठती हैं। विधि शिक्षा समिति को इन शिकायतों पर ध्यान देना चाहिए और इन्हें दूर करना चाहिए।

8.6 ऐसी भी शिकायत है कि अनेक बार निरीक्षण सतही होते हैं और उन महाविद्यालयों को, जिनकी दशा खराब है, क्लीन चिट दे दी जाती है जब कि उन विद्यालयों को जो अच्छी प्रकार से चल रहे हैं और जिनके विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय में निरंतर प्रथम श्रेणियां प्राप्त की हैं अथवा जिनके विद्यार्थियों का यू०के० तथा यू०ए० के विद्यालय विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए लगातार चयन हुआ है, मान्यता समाप्त कर दी जाती है।

8.7 प्रबंधतंत्रों द्वारा भाविष्यत् के विरुद्ध वास्तव में अनेक कोर्ट केस फाइल किए गए हैं और इसमें संदेह नहीं है कि उनमें से कुछ खारिज भी हुए हैं और कुछ को आलोचनापूर्ण ऐसी टिप्पणियों के साथ ग्रहण भी किया

गया है जिन टिप्पणियों में निरीक्षण की रीति के विरुद्ध अथवा संलग्नता समाप्त करने के विरुद्ध विचार व्यक्त किए गए हैं। उच्च न्यायालयों की विधि रिपोर्ट इन तथ्यों की साक्षी है।

8.8 हम मानते हैं कि अनेक महाविद्यालयों के निरीक्षण के विषय में कुछ शिकायतें अथवा मुकदमेबाजी हो ही सकती हैं। तथापि, हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि भाविष्यत् को अनुमति प्रदान करते समय अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए।

8.9 नियमों में व्यवस्था है कि विश्वविद्यालय तथा विधि विद्यालय को विधिज्ञ परिषद् के विधिपूर्ण निर्देशों का पालन करना होगा और यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो परिणामस्वरूप उनके विरुद्ध दाइडक कार्यवाही की जा सकती है, अतः निरीक्षणों के विषय में जो प्रक्रिया है उसमें सुधार किया जाना चाहिए। यद्यपि उन महाविद्यालयों के साथ, जो अपेक्षित मानकों के अनुरूप नहीं हैं कठोर होने की आवश्यकता नहीं है किन्तु इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि अच्छे महाविद्यालय खराब निरीक्षणों के कारण परेशानी न उठाए। शक्ति का प्रयोग करने के विषय में भाविष्यत् भी अन्य सार्वजनिक निकायों के समान उत्तरदायी है।

8.10 अतः यह अपेक्षित है कि निरीक्षण की प्रक्रिया में आमूलचूल सुधार किया जाए। हम समय समय पर आत्म निरीक्षण कर सकते हैं, और प्रक्रिया पर ध्यान दे सकते हैं उसका पुनरीक्षण कर सकते हैं और ऐसी प्रक्रिया अपना सकते हैं जिससे विगत गलियों को दूर कर दिया जाए या जिसके परिणामस्वरूप बेहतर निरीक्षण किए जा सकें और सार्वजनिक आलोचना से बचा जा सके। कुछ भी कहिए, हमारा लक्ष्य एक ही है, अर्थात् यह देखना कि अच्छे विद्यालयों की स्थापना की जाती है और विद्यार्थियों को समुचित गुणवत्तापूर्ण विधि शिक्षा प्रदान की जाती है।

8.11 एक बात और है, एक से अधिक निकायों द्वारा निरीक्षण किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अथवा विश्वविद्यालय के विभिन्न कानूनों के अंतर्गत विश्वविद्यालय प्राधिकारियों द्वारा निरीक्षण और भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा निरीक्षण भी। ए०आई०सी०टी०ई० अधिनियम के अंतर्गत निरीक्षणों में भी इसी प्रकार के विभिन्न निरीक्षण थे, जैसे कि, इंजीनियरिंग महाविद्यालय के संबंध में विश्वविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा तथा ए०आई०सी०टी०ई० द्वारा प्रतिनियुक्त व्यक्तियों द्वारा निरीक्षण के उपबंध थे। चिकित्सा महाविद्यालय के निरीक्षण के दशा में भी ऐसी ही स्थिति थी। वहाँ भी एक से अधिक निरीक्षण किए जाते हैं, कुछ विश्वविद्यालय द्वारा और कुछ भाविष्यत् द्वारा अनेक निरीक्षणों के परिणामस्वरूप प्रायः परस्पर विरोधी रिपोर्ट आती है।

8.12 जब ऐसी रिपोर्ट में विरोध आता है तो प्रबंधतंत्र को किसी न किसी निरीक्षण के प्रति असंतोष होता है। उच्चतम न्यायालय ने इंजीनियरी और चिकित्सातीय महाविद्यालय के कई मामलों में निरीक्षणों के प्रश्न पर चर्चा की है। हम, विशेषरूप से, जया गोगुल एज्यूकेशन ट्रस्ट बनाम सरकार के आयुक्त तथा सचिव, 2000 (5) एस सी सी 231 का उल्लेख करना चाहेंगे। इस मामले में परस्पर विरोधी रिपोर्ट थी, और न्यायालयों को ए०आई०सी०टी०ई० अधिनियम के अंतर्गत बनाए गए विनियमों का उल्लेख करने का अवसर मिला जिसमें कुछ सुझाव दिए गए। विनियम 8(4) में यह उपबंध है कि अनुमति प्रदान करने के प्रारम्भिक प्रक्रम पर परिषद् का बूरो—

(i) संबंधित राज्य सरकार, और

(ii) संलग्नकर्ता विश्वविद्यालय,

की टिप्पणियां/सिफारिशें मांगता है और इनके अतिरिक्त ए०आई०सी०टी०ई० के प्रादेशिक निकायों से भी सिफारिशें मांगता है। विनियम 8(5) में यह अपेक्षा की गई है कि प्रादेशिक कार्यालय ए०आई०सी०टी०ई० द्वारा गठित एक विशेषज्ञ समिति द्वारा परिभ्रमण की व्यवस्था करे जो ए०आई०सी०टी०ई० को अपनी सिफारिशें भेजे। विनियम (8) में अधिकथित है कि यदि विश्वविद्यालय या ए०आई०सी०टी०ई० के प्रादेशिक कार्यालय की सिफारिशों में कोई विसंगति है तो राज्य सरकार एक सेन्ट्रल टास्क फोर्स को संबंधित अभिकरणों के प्रतिनिधियों द्वारा आगे और विचार विमर्श करने के लिए नियंत्रित करे और उसके बाद सिफारिशों की जाए। सेन्ट्रल टास्क फोर्स की सिफारिश पर भी ए०आई०सी०टी०ई० अंतिम नियंत्रण लेगी। विनियम 8(10) में यह अधिकथित है कि ए०आई०सी०टी०ई० के नियंत्रण को संबंधित राज्य सरकार को अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को तथा संबंधित विश्वविद्यालय को आगामी वर्ष की 30 अप्रैल से पूर्व उस दशा में संसूचित कर दिया जाए जब संस्था

को आरंभ करने के बास्ते आवेदन पूर्व वर्ष की 31 दिसम्बर से पहले कर दिए गए हैं। टास्क फोर्स में अधीनस्थ न्यायपालिका का एक सदस्य, जो जिला तथा सत्र न्यायाधीश के स्तर का हो, रहेगा।

हम सिफारिश करते हैं कि भारतीय द्वारा बनाए गए निरीक्षण नियमों में भी यह उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए कि निरीक्षण समिति के सदस्यों में कम से कम एक शिक्षाविद उस राज्य से भिन्न राज्य का होगा जहां महाविद्यालय स्थापित किया जाना है अथवा पहले से स्थापित है।

हम यह सिफारिश भी करते हैं कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में यह उपबंध करने के लिए पृथक उपबंध जोड़े जाएं कि भारतीय और विश्वविद्यालयों की निरीक्षण रिपोर्टें में यदि कोई असंगति है अथवा जहां प्रबंधतंत्र के दावे और निरीक्षण समिति के दावे के बीच कोई बड़ा अंतर है वहां एक टास्क फोर्स द्वारा ए॰आई॰सी॰टी॰ई॰ के विनियमों के अनुरूप निरीक्षण किया जाना चाहिए और उस टास्क फोर्स में किसी न्यायिक अधिकारी को सदस्य के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

भारतीय विधिज्ञ परिषद् को यह नहीं समझना चाहिए कि उक्त सिफारिशें निरीक्षण समितियों के प्राधिकार को कम करने के लिए है अपितु यह समझना चाहिए कि वे निरीक्षण प्रक्रिया की बाबत शिकायतों को रोकने के लिए आशयित हैं, और, वास्तव में, इस समय ऐसी ही प्रक्रिया का अनुपालन ए॰आई॰सी॰टी॰ई॰ इंजीनियरी महाविद्यालयों के संबंध में कर रही है। भारतीय की समितियों द्वारा किए जाने वाले निरीक्षण स्पष्ट और पारदर्शी होने चाहिए तथा औचित्य और नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों का सख्ती के साथ पालन किया जाना चाहिए। यदि निरीक्षण के विश्वद्वंद्व कोई शिकायत की जाती है तो उसे किन्हीं विरोधियों के बीच विवाद की तरह नहीं लिया जाना चाहिए अपितु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों से सुसंगत तथ्य ग्राही मिशन के रूप में देखा जाना चाहिए। वास्तव में, यदि टास्क फोर्स के निर्णय भारतीय की निरीक्षण समितियों के निर्णयों से मेल खाते हैं तो इससे भारतीय की निरीक्षण समितियों के निर्णयों की शक्ति में बढ़ि ही होगी।

8.13 अतः हम सिफारिश करते हैं कि—(i) विधि महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के विधि विभाग अथवा किसी अन्य संस्था द्वारा भारतीय से पूर्व अनुमति प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए धारा 7क के रूप में एक पृथक उपबंध निम्नलिखित प्रकार से जोड़ा जाए, अर्थात्—

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की पूर्व अनुमति/अनुमति:

“7क.(1) अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के प्रारंभ होने के पश्चात् कोई भी विधि महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि अध्ययन का कोई ऐसा पाद्यक्रम प्रस्तावित नहीं करेगा या प्रदान नहीं करेगा जिसके परिणामस्वरूप अधिवक्ता के रूप में किसी व्यक्ति को नामांकित किया जाए, तथा किसी विद्यार्थी को ऐसे पाद्यक्रम में तब तक प्रवेश नहीं दिया जाएगा जब तक भारतीय द्वारा ऐसा पाद्यक्रम आरंभ करने की पूर्व अनुमति प्रदान नहीं कर दी जाएः

परन्तु, अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के प्रारंभ से पूर्व भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियमों के अंतर्गत प्रदान की गई कोई अनुमति या उसके साथ संलग्नता का कोई अनुमोदन इस उपधारा के अधीन प्रदत्त अनुमति मानी जाएगी।

(2) कोई विधि महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि में अध्ययन के ऐसे किसी पाद्यक्रम को चालू नहीं रखेगा जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को अधिवक्ता के रूप में नामांकित किया जा सकता है, तथा किसी भी विद्यार्थी को ऐसे पाद्यक्रम में प्रवेश नहीं दिया जाएगा यदि उपधारा (1) के अंतर्गत प्रदान की गई अनुमति को भारतीय ने वापिस ले लिया है।

(3) उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का उल्लंघन करके प्रवेश के लिए संग्रह की गई फीस या रकम, वह किसी भी नाम से संग्रह की गई हो, वापिस कर दी जाएगी।

(4) उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का कोई भी उल्लंघन धारा 45क के अधीन दण्डनीय अपराध होगा। (विद्यमान धारा 7क को धारा 7घ के रूप में पुनःसंचालित किया जाना चाहिए)।”

(ii) प्रस्तावित धारा 7क के उल्लंघन के लिए दण्ड का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए 45क के रूप में एक नया उपबंध निम्नलिखित रूप में जोड़ा जाएः

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना शिक्षा प्रदान करने के लिए शास्ति

“45क.(1) यदि कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत कोई संस्था, कंपनी सोसायटी, न्यास या निकाय भी आता है, अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के आरंभ के पश्चात्, धारा 7क की उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का उल्लंघन करता है तो वह साधारण कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुमानी से जो 50000 रुपए तक हो सकता है, अथवा दोनों से, दण्डनीय होगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन उल्लंघित अपराध का विचारण किसी मेट्रो पोलिटिन मेजिस्ट्रेट अथवा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) के अधीन उल्लंघित अपराध यदि किसी संस्था कंपनी, सोसायटी, न्यास या निकाय द्वारा किया जाता है तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो अपराध किए जाने के समय ऐसी संस्था, कंपनी, सोसायटी न्यास या निकाय के मामलों के संचालन के लिए उत्तरदायी हो और ऐसी संस्था, कंपनी, सोसायटी, न्यास या निकाय भी, अपराध का दोषी माना जाएगा तथा तदनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी और उसे दण्ड दिया जाएगा;

परन्तु इस धारा की किसी बात के कारण कोई ऐसा व्यक्ति किसी दण्ड के दायित्वाधीन नहीं होगा यदि वह यह साम्राज्य कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा ऐसे अपराध को रोकने के लिए उसने सभी सम्यक् तत्परता बरती थी।”

(iii) विद्यमान धारा 7 (1)(ज) का संबंध विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करने मात्र से है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के निरीक्षण के प्रयोजन के लिए पृथक धारा 7(ख) (ग) निम्नलिखित रूप में जोड़ी जाएंगी, अर्थात्—

विधि महाविद्यालय और विश्वविद्यालय का निरीक्षण

“7ख.(1) भारतीय, मान्यता या अनुमति प्रदान करने के प्रयोजन के लिए अथवा यह अभिनिश्चित करने के लिए कि विधि शिक्षा के मानकों को बनाए रखा जा रहा है या नहीं निम्नलिखित का परिभ्रमण या निरीक्षण कर सकती है—

- (i) विश्वविद्यालय जो विधि की उपाधि प्रदान करता है;
- (ii) विश्वविद्यालय का विधि विभाग;
- (iii) किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध/संलग्न विधि महाविद्यालय।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भारतीय राज्य विधिज्ञ परिषद् को, उस उपधारा में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए, उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी विश्वविद्यालय, विभाग या विधि महाविद्यालय का परिभ्रमण या निरीक्षण करने का तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश भी दे सकती है।

टास्क फोर्स (कार्य दल)

“7ग.(1) जहां विधिज्ञ परिषद् द्वारा 7 (ख) के अधीन दी गई रिपोर्टें और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी गई रिपोर्ट के बीच कोई तत्त्विक प्रकृति का अंतर है तथा रिपोर्टों का संबंध किसी विश्वविद्यालय या किसी विश्वविद्यालय के विभाग से है, वहां एक टास्क फोर्स द्वारा, जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, आगे और निरीक्षण किया जाएगा—

- (i) भारतीय द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;
- (ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;
- (iii) राज्य सेवा का एक न्यायिक अधिकारी जिसे संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा।

(2) जहां विधिज्ञ परिषद् द्वारा धारा 7 (ख) के अधीन दी गई रिपोर्टें और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी गई रिपोर्ट के बीच कोई तात्त्विक प्रकृति का अंतर है तथा रिपोर्टें का संबंध उस विश्वविद्यालय से संलग्न किसी विधि महाविद्यालय से है, वहां एक टास्क फोर्स द्वारा जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति होंगे आगे और निरीक्षण किया जाएगा—

- (i) राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;
 - (ii) संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;
 - (iii) राज्य सेवा का एक न्यायिक अधिकारी जिसे संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा।
- (3) भा.वि.प. टास्क फोर्स की रिपोर्ट के प्रकाश में अन्य रिपोर्टें पर विचार करेगी तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निर्णय लेगी।"
- (iv) धारा 6 (1) (छ) निम्नलिखित रूप में प्रतिस्थापित की जानी चाहिए:

"(छ). किसी ऐसे विश्वविद्यालय के विधि विभाग का अथवा किसी विश्वविद्यालय से संलग्न किसी विधि महाविद्यालय का, धारा 7 खं (की उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेशों के अनुसार परिव्रमण और निरीक्षण करना।"

 - (v) धारा 7(1) (झ) को निम्नलिखित रूप में प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए:

"(झ). उन विश्वविद्यालयों को, जिनकी विधि की उपाधि अधिवक्ता के रूप में नामांकित किए जाने के लिए अर्हता होगी, मान्यता प्रदान करना या मान्यता को रद्द करना अथवा किसी विश्वविद्यालय को यह निदेश देना कि वह विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करके किसी विधि महाविद्यालय की किसी विश्वविद्यालय के साथ संलग्नता को समाप्त कर दे।"

 - (vi) धारा 7 की उपधारा (1) में निम्नलिखित रूप में एक पृथक खण्ड जोड़ा जाएगा जो भावित्प को किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग को अथवा किसी विधि महाविद्यालय को विधि शिक्षा प्रदान करने की अनुमति देने के लिए समर्थ बनाएगी:

"(झघ). किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग को अथवा किसी विधि महाविद्यालय को अधिवक्ता के रूप में नामांकित करने के लिए विधि के अध्ययन की शिक्षा प्रदान करने के किसी ऐसे पाठ्यक्रम को चलाने की अनुमति प्रदान करना अथवा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करके ऐसी अनुमति को वापिस लेना।"

 - (vii) धारा 49 की उपधारा (1) में निम्नलिखित खण्ड जोड़ा जाए:

"(कट) विधि महाविद्यालयों, किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग या किसी अन्य संस्था को, जिनका उल्लेख धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (झघ) में किया गया है, शिक्षा प्रदान करने के लिए अनुमति प्रदान करने की बाबत प्रक्रिया तथा ऐसी अनुमति को वापिस लेने की बाबत प्रक्रिया।"

 - (viii) धारा 49 (1) (घ) को निम्नलिखित रूप में प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए:

"(घ). धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) में यथानिर्दिष्ट विधि शिक्षा के मानक जिनका अनुपालन विश्वविद्यालय को और विश्वविद्यालय से संलग्न विधि महाविद्यालय को करना होगा तथा धारा 7 खं और धारा 7 ग में यथानिर्दिष्ट, ऐसे विश्वविद्यालय और विधि महाविद्यालयों के निरीक्षण की रीति।"

अध्याय IX

परीक्षा प्रणाली, समस्या पद्धति और विधि अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र

9.1 अब हम संक्षेप में परीक्षा प्रणाली के बारे में उल्लेख करेंगे। अहमदी कमेटी रिपोर्ट, 1994 में इस पहलू पर चर्चा की गई है और यह विचार किया गया है कि उन विद्यार्थियों की गुणवत्ता में, जो अंततोगत्वा बकील बनेंगे, सुधार लाने की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है।

9.2 विगतकाल में अनेक वर्षों से यह विश्वास रहा है कि यदि कोई व्यक्ति विधि का अध्ययन करना चाहता है तो उसके लिए आवश्यक नहीं है कि वह नियमित रूप से कक्ष में उपस्थित रहे और यदि वह कुछ प्रकाशकों द्वारा, जिनकी निगाह केवल लाभ कमाने पर रहती है, प्रकाशित छोटी-छोटी पुस्तकों को पढ़ लेता है तो वह विधि परीक्षा में आसानी से उत्तीर्ण हो सकता है। ऐसी आसान पद्धतियां बहुत आकर्षक रही हैं और आज भी उन विद्यार्थियों के लिए, जो केवल उत्तीर्ण होना चाहते हैं, आकर्षक बनी हुई हैं। कुछ ऐसे विद्यार्थी भी होते हैं जो मूल अधिनियम को कभी पढ़ते ही नहीं हैं; उन पर की गई व्याख्याओं को पढ़ने की बात तो बहुत दूर है। वे केवल उक्त छोटी पुस्तकों पर निर्भर रहते हैं जिनमें कुछ व्यौरी के प्रश्न सम्मिलित किए जाते हैं जिन्हें विद्यार्थी पर्याप्त समझाते हैं जब ये बकालत के लिए जाते हैं तो वे पहली बार अधिनियमों को अथवा उन पर टिप्पणियों को पढ़ने के लिए पुस्तके खोलते हैं और पक्षकारों की समस्या और व्यवसाय की आवश्यकताओं के साथ चलने में असमर्थ रहते हैं। तथापि, यह बात उन विद्यार्थियों पर लागू नहीं होती जो अधिक गंभीर होते हैं और नियमित होते हैं तथा जिनकी विषयों में गहरी रूचि होती है तथा जो व्यवसाय में अपना स्थान चाहते हैं किन्तु ऐसे विद्यार्थियों की संख्या आज बहुत कम है। हम उन विद्यार्थियों का उल्लेख नहीं कर रहे हैं जो नये विधि विश्वविद्यालयों या ऐसे महाविद्यालयों में हैं जिन्हें आज भी सर्वोत्तम या स्टार माना जा रहा है।

9.3 विधि परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिए छोटे रस्ते अपनाने वाले विद्यार्थियों का प्रतिशत कुछ भी क्यों न हो आयोग का मत है कि दुष्प्रथाओं को, जैसे, नकलबाजी (जिन्हें कतिपय केन्द्रों पर अपनाया जाता है) तथा विधि विद्यालयों से अनुपस्थित रहने की पुरानी समस्या को दूर करने के उद्देश्य से आज परीक्षा प्रणाली का परिमाजन करने की बहुत आवश्यकता है। केवल किताबी ज्ञान के स्थान पर विधि के व्यावहारिक पहलुओं पर जोर दिया जाना चाहिए। यह बात महाविद्यालय से ही आरभ होनी चाहिए।

व्याख्यान पद्धति तथा केस पद्धति

9.4 अध्यापन के तरीके समय-समय पर बदलते रहे हैं। व्याख्यान की पुरानी पद्धति की पूर्ति के लिए प्रो॰ नागडेल ने हारवर्ड में 1911 में 'केस पद्धति' आरम्भ की थी और इन पद्धतियों की संपूर्ति के रूप में बाद में 'समस्या पद्धति' को अपनाया गया।

समस्या पद्धति:

9.5 आज अध्यापन की 'समस्या पद्धति' को अन्य दोनों पद्धतियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है।

9.6 समस्या पद्धति का आरम्भ प्रो॰ जेरोम फैंक ने अपने लेख 'वाई नाट ए क्लीनीकल लॉयर स्कूल' 81 यू.पी.एल. रिव्यू 907 (1933) में किया था और इसका विस्तार अपनी थीसिस "बॉथ एण्डस अगेन्स्ट द मिडिल" (1991) 100 यू.पी.एल. रिव्यू 20 में किया जिसमें उन्होंने शिक्षायत की कि विधि शिक्षा पर 'लांगडेल का भूत हावी नहीं रहना चाहिए।' उन्होंने यह भी कहा कि विधि पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान और मानव शास्त्र को सम्मिलित किया जाना चाहिए। विधि का अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, सामाजिक प्राणी शास्त्र और नैतिक आदर्शों से गहरा संबंध है। मानव शास्त्र को भी सामाजिक विज्ञान से जोड़ा जाना चाहिए। प्रो. फैंक का कथन है कि विद्यार्थियों का परिचय —

"उन महान साहित्यक कलाकारों से कराया जाना चाहिए जिनकी काव्य कल्पना का संबंध किन्हीं विशिष्ट और अनौर्ध्वी वस्तुओं के साथ है।" तथा कानूनी निदान में इस उद्देश्य को प्राप्त करना आवश्यक है।

9.7 श्री स्टीफेन नाथनसन ने अपने लेख “‘डेवलपिंग लीगल प्रोब्लम सालिंग स्किल्स’” (1994) भाग 44 जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन (पृष्ठ 215) पर कहा है कि अध्यापकों को “समस्या समाधान के सामान्य कौशल और संदर्भगत विनिर्दिष्ट ज्ञान” का मिश्रण करना चाहिए।

9.8 1979 में, आस्ट्रेलिया में रेसल स्टीवर्ट ने कहा था कि कानूनी समस्या के समाधान के कौशल की शिक्षा व्यावसायिक विधि शिक्षा का मूल उद्देश्य होनी चाहिए। अमरीका में, 1994 में, जी एम्सटाडम ने भविष्य वाणी की थी कि 21वीं शताब्दी तक विधि शिक्षा का ध्यान केस अध्ययन, सिद्धांत विश्लेषण और विधिक तर्क से हटकर व्यावहारिक कौशल के व्यापक परिवेश की ओर जाएगा जिसमें समस्या समाधान कौशल भी आता है। 1991 में, इलैंड में, किम इकानोमाइड तथा जेफ इस्माल द्वारा किए गये अनुसंधानात्मक अध्ययन में मुख्य कार्यों और कौशलों को गिनाते हुए यह कथन किया गया है कि विधि व्यवसाय के प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रधान रूप से समस्या समाधान होना चाहिए। 1992 में अमरीका के वकील संघ की मेक कैट रिपोर्ट में समस्या समाधान को सभी कानूनी कौशलों में अति प्रमुख के रूप में स्वीकार किया गया है।

9.9 पाठ्यक्रम को डिजाइन करना होगा। एक पाठ्यक्रम रूपरेखा तैयार करनी होगी। सिद्धांत और व्यावहारिकता को जोड़ना होगा। समस्या आंकड़ा बैंक तैयार करना होगा और उसका वितरण सभी विधि विद्यालयों में करना होगा।

9.10 गोल्डन गेट विश्वविद्यालय के प्रो. माइरोन मास्कोविज ने अपने लेख “‘वियोन्ड द कैस मेथड-इट इज टाइम टू डील विद प्रावलम्स’” में ‘समस्या पद्धति’ पर विस्तार से चर्चा की है। (देखिए (1992) भाग 42. जर्नल आफ लीगल एज्यूकेशन, पृष्ठ 241)।

9.11 अमेरिकन एसोसिएशन आफ ला स्कूल्स (ए एल एस) ने 1942 की अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित कथन किया है:

“समस्या पद्धति का लाभ यह है कि यह विधि के विद्यार्थी को सुरंगत सामग्री को नई स्थितियों पर लागू करने पर विचार करने पर बहुत अधिक बल देती है और वह यह समझ जाता है कि केस तथा कानून में इसका प्रयोग किया जाना चाहिए और उसे केवल अपने लाभ के लिए सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए।”

ए ए एल की एक पश्चात्वर्ती रिपोर्ट में समस्या पद्धति के पांच लाभ गिनाए गए हैं: (1) यह विधि के प्रति वकील की पहुंच को उजागर करती है, (2) यह योजना तैयार करने और परामर्श देने का प्रशिक्षण प्रदान करती है, (3) यह विद्यार्थी के विचार योग्य विषयों की परिधि को विकसित करती है, (4) यह शिक्षा की प्रभावशीलता में वृद्धि करती है, विशेषरूप से वहाँ जहाँ केस विधि पर्याप्त हो। (मुख्य रूप से वहाँ जहाँ विधि का संबंध हो) तथा (5) यह विद्यार्थी की रुचि में वृद्धि करती है। प्रो॰ माइरोन मास्कोविज ने अपने उपरोक्त लेख में (पृष्ठ 249 पर) ‘समस्या पद्धति’ विषय पर प्राप्त वृहत् साहित्य का उल्लेख किया है। लेखक ने दार्पणिक विधि की समस्या का उल्लेख वहाँ किया है जहाँ मिराण्डा नियम अंतरग्रस्त है तथा अमरीका की सुप्रीम कोर्ट के चार मामलों की चर्चा की है जिनमें से प्रत्येक के नियम में मिराण्डा चेतावनियों के विषय पर विधि में छोटे-छोटे अंतरों का उल्लेख है तथा विद्यार्थियों को इन पहलुओं को समझना चाहिए। उनका कथन है (पृष्ठ 258) कि अन्तोगत्वा समस्या पद्धति को निगल लेती है। लेखक ने उस रीत का भी उल्लेख किया है जिसमें समस्याओं का समाधान किया जाना चाहिए।” लेखक ने आगे कहा है (पृष्ठ 267) “अब हमारे पास ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें समस्याएं दी गई हैं” तथा अनेक प्रकार की समस्या पुस्तकें उपलब्ध हैं। ऐसी पांच प्रकार की पुस्तकों का उल्लेख किया गया है।

9.12 प्रो॰ बोर्च ने चिकित्सा विज्ञान के एक प्रोफेसर की इस बात का उल्लेख किया है कि शिक्षा शास्त्रियों में अध्यापन के नये तरीके अपनाने के बारे में व्यापक रूप से परम्परावादिता है। अध्यापकों को समस्या समाधान के विषय में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। “व्यावसायिक शिक्षाविद तथा सम्बद्ध अध्यापक” पाठ्यक्रम के इस भाग को प्रभावी ढंग से हल कर सकते हैं।

‘समस्या पद्धतियां’ के विषय पर वृहत् साहित्य है।

नई शिक्षा प्रणाली अनुपस्थिति और कदाचार को समाप्त कर देगी:

9.13 अहमदी कमेटी रिपोर्ट में एक प्रणाली का सुझाव दिया गया था जिसमें परीक्षा का सिद्धांत भाग (थोरी पार्ट) – जिसमें उत्तीर्णिक प्राप्त करना कठिन नहीं है – 25 प्रतिशत या 20 प्रतिशत अंकों तक सीमित होगा और विधि संबंधी समस्याओं के लिए 75 प्रतिशत या 80 प्रतिशत अंक आबंटित किए जाने चाहिए। सिद्धांत भाग और समस्या भाग के लिए पृथक न्यूनतम अंक होने चाहिए। विधि समस्याओं का महत्व यह है कि अध्यर्थी को परीक्षा भवन में अपने मस्तिष्क का स्वतंत्र रूप से प्रयोग करना होगा। उसे नकल का सहारा नहीं लेना होगा अथवा न उसे अपने अधीक्षकों से सहायता लेने की आवश्यकता होगी क्योंकि जब तब कोई व्यक्ति गहराई तक नहीं जाता है तब तक कुछ भी नहीं समझता है भले ही परीक्षा भवन में उस पर कृपा करने वाला अधीक्षक उसकी हर सहायता करने के लिए तैयार क्यों न हो। हम केवल उन महाविद्यालय की चर्चा नहीं कर रहे जो अच्छे और जहाँ पर कोई भी कुप्रथाएं नहीं है। हम केवल उन महाविद्यालय की चर्चा कर रहे हैं जहाँ पर कुप्रथाएं विद्यमान हैं या जहाँ पर प्रबंधन कुप्रथाओं को बढ़ावा देता है। समस्या पद्धति से न केवल दुष्प्रथाएं रुकेंगी अपितु विद्यार्थी व्यावहारिक समाधानों पर विचार करेंगे और उन्हें विकसित करेंगे। यह तब तक संभव नहीं है जब तक विद्यार्थी इस विषय में पारंगत न हो। समस्या पद्धति से दुष्प्रथाएं समाप्त हो जाएंगी।

9.14 हमारा यह मत है कि जहाँ तक समस्याओं से युक्त प्रश्नपत्र का संबंध है, विद्यार्थियों को मूल अधिनियम साथ रखने की अनुमति दी जा सकती है ताकि वे धाराओं को स्पष्ट रूप से पढ़ सकें और उत्तर सोच सकें। हाँ यह बात कुछ विषयों पर लागू नहीं होती जैसे टार्ट विधि जिसमें कतिपय विधि सिद्धांतों से संबंधित केस विधि पर आधारित प्रश्न होंगे न कि कानून पर।

9.15 समस्या पद्धति का एक दूसरा लाभ यह है कि विद्यार्थियों को कक्षाओं में आवश्यक रूप से उपस्थित रहना होगा अन्यथा वे ऐसी परीक्षा प्रणाली का सामना नहीं कर सकते।

तीसरा लाभ यह है कि विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग करेंगे।

इस प्रकार समस्या पद्धति के अनेक लाभ हैं जैसे (i) दुष्प्रथाओं की समाप्ति (ii) विद्यार्थियों को कानूनों को ध्यान से पढ़ने और समझने में समर्थ बनाना और (iii) कक्षाओं से अनुपस्थिति पर स्वयं नियंत्रण हो जाना।

‘समस्या पद्धति’ को आरम्भ करने के लिए विभिन्न विषयों पर समस्याओं के वृहत् आंकड़ों का भण्डार तैयार करना आवश्यक होगा।

जहाँ तक विधि पाठ्यक्रम में विषयों को विहित करने का संबंध है, आयोग यह मानता है कि निदानात्मक विधि शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए। यह पाठ्यक्रम अफ्रीका के सभी विश्वविद्यालयों में विधि का प्रमुख भाग है तथा विधिक सहायता प्रणाली में उत्कृष्ट रूप से सहायक है। भारत में भी दिल्ली विश्वविद्यालय विधि निदान शिक्षा कार्यक्रम को अनेक बर्ती से सफलपूर्वक चला रहा है। इससे विद्यार्थी आवेदन/पटीशन तैयार करने की ओर विचाराधीन कैदियों तथा संरक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं के लाभार्थियों की विधि परामर्श देने की कुछ शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। सभी विधि महाविद्यालयों में इसे अनिवार्य बनाया जा सकता है।

विधि अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र

9.16 एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष प्रशिक्षण प्रणाली का पुनः संशोधन करने की आवश्यकता के बारे में है और यह कार्य अनेक विशेष संस्थान स्थापित करके किया जा सकता है जिससे कि विधि अध्यापकों को अपना ज्ञान अद्यतन रखने में सहायता दी जा सके। यद्यपि हम इस बात से सहमत हैं कि विधि विद्यार्थियों में अनेक अच्छे अध्यापक हैं जिनके पास उच्च अर्हताएं हैं और जो सक्षम हैं किन्तु फिर भी विधि व्यवसायियों की नई-नई आवश्यकताओं से, तथा हमारे न्यायालयों के अद्यतन निर्णयों से अनुनादित और कानूनों से तथा हाउस ऑफ लार्डस अमरीका और कनाडा की सुप्रीम कोर्टों, आस्ट्रेलिया की हाई कोर्ट और न्यूजीलैण्ड के न्यायालयों तथा स्ट्रासबर्ग स्थित यूरोपियन ह्यूमन राइट्स कोर्ट के निर्णयों से उन्हें परिचित रखने की बहुत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त विदेशों में विधि के नये सिद्धांतों की जानकारी रखना और महत्वपूर्ण विषयों, जैसे ट्रेड मार्क, कापी राइट, पेटेन्ट, ड्रिप एग्रीमेन्ट, साइबर विधि, पर्यावरण विधि, मानव अधिकार और अन्य नये विषयों से परिचित रहने की आवश्यकता भी है।

9.17 जहां एक ओर महाविद्यालय स्तर पर प्रक्रिया संबंधी कानूनों से संबंधित कठिपय विषयों को पढ़ाने की आवश्यकता है वहीं दूसरी ओर इस बात की आवश्यकता है कि विधि अध्यापक प्रक्रिया विधि के कठिपय व्यावहारिक पक्षों से परिचित होने चाहिए। अतः अध्यापकों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा चलाए जा रहे विद्यमान रिफ्रेशर पाठ्यक्रमों के अतिरिक्त, यह आवश्यकता है कि विधि अध्यापकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए।

9.18 इसका आरम्भ, केन्द्र सरकार द्वारा भारतीय विधिज्ञ परिषद तथा विंअ०आ० के परामर्श से भारत के चारों दोनों में कम से कम चार महाविद्यालय स्थापित करके किया जाना चाहिए। विधि अध्यापकों को विधि की विभिन्न शाखाओं की विशेषज्ञता द्वारा सेन्टरों पर पूरी जानकारी मिलनी चाहिए और इस प्रयोजन के लिए अन्य राज्यों से और अन्य देशों से भी मेहमान व्याख्याताओं को आमंत्रित करना चाहिए।

9.19 उक्त प्रयोजन के लिए आवश्यक है कि विंअ०आ० तथा भारत सरकार आवश्यक धन उपलब्ध कराएं।

9.20 हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 (1) में प्रस्तावित खण्ड (झघ) के पश्चात् नये खण्ड (झड) और (झच) निम्नलिखित रूप में जोड़े जाएः

“(झड) विधि अध्यापकों को विधि शिक्षा प्रदान करते रहने के लिए केन्द्रीय सरकार को संस्थान स्थापित करने में सुविधा प्रदान करने के लिए आवश्यक उपाय करना।”

“(झच) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के परामर्श से विधि शिक्षा के मानकों को विकसित करने के लिए उपाय करे।

9.21 हम यह सिफारिश भी करते हैं कि ‘समस्या पद्धति’ को उपरोक्त प्रश्नपत्र में 75 प्रतिशत से अधिक तर्क परीक्षा प्रणाली में प्रवेश दिया जाए और सिद्धांत का भाग 25 प्रतिशत रहे। विद्यार्थियों को सिद्धांत (थ्यौरी) के रूप में न्यूनतम अंक और परीक्षा में समस्या भाग के लिए पृथक न्यूनतम अंक प्राप्त करने होंगे। इससे विद्यार्थी को प्रत्येक विषय में अपने मस्तिष्क का गंभीरतापूर्वक प्रयोग करने में सहायता मिलेगी। इससे दुष्प्रथाएं भी समाप्त हो जाएंगी। कक्षा में भी अवश्य वृद्धि होगी।

अध्याय X

विधि शिक्षा साहित्य की शिक्षा

10.0 आज ‘विधि शिक्षा’ स्वयं में अध्ययन की एक विशिष्ट शाखा है और उस पर बहुत साहित्य उपलब्ध है, भारतीय भी और विदेशी भी, जिसमें अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए सुसंगत विधि शिक्षा के विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख है। आयोग का मत है कि विधि व्यवसायियों के लिए, तथा संकाय, विंअ०आ० और प्रबंध वर्ग के लिए भी भारत में और विदेशों में विधि शिक्षा के विकास से परिचित रहने की आवश्यकता है। श्री एम० सी० सीतलबाड़ की अध्यक्षता में विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट 1958 में भारत, यूएसए, यूके० और कनाडा में तत्समय उपलब्ध विधि शिक्षा साहित्य का उल्लेख किया गया है।

10.1 यह सुझाव दिया जाता है कि भार्विं प० तथा विंअ०आ० की विधि शिक्षा समितियों के पास विधि शिक्षा के विषय पर पुस्तकालय होने चाहिए जिनमें विधि शिक्षा साहित्य उपलब्ध हो जिससे कि उक्त दोनों समितियों को भारत में तथा अन्य देशों में विधि शिक्षा के विषय पर सम्प्रकालीन साहित्य, विगत और वर्तमान दोनों पर उपलब्ध सभी रिपोर्टों का लाभ मिल सके। उदारीकरण, प्राइवेटीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में, विधि शिक्षा की पद्धतियों में उपात्तरण करने होंगे और हमारी समितियों को अन्यत्र विद्यमान नये विचारों/सिद्धांतों को भी ध्यान में रखना होगा। कुछ नये विषयों को भी आरम्भ करना होगा।

10.2 भारत में विधि शिक्षा और व्यवसाय पर श्री पी० एल० मेहता और श्रीमती सुषमा गुप्ता की नवी पुस्तक में विधि शिक्षा के इतिहास को तलाशा गया है और उसके अध्याय 4 में निम्नलिखित रिपोर्टों का उल्लेख है:

1. 1681–1961 के दौरान विधि शिक्षा
2. प्रथम भारतीय विश्वविद्यालय आयोग रिपोर्ट 1902
3. छागला समिति रिपोर्ट 1955
4. मुम्बई विधि शिक्षा समिति रिपोर्ट जिस समिति में डा० पी० वी० काणे, न्या० एन० एच० भगवती थे
5. अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय बोर्ड रिपोर्ट 1950
6. भारतीय विधिज्ञ परिषद् समिति रिपोर्ट 1953
7. राजस्थान विधि शिक्षा समिति रिपोर्ट 1955
8. श्री एम० सी० सीतलबाड़ के सभापतित्व में विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट 1958
9. डा० सी० डी० देशमुख, कुलपति दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त गजेन्द्र गडकर समिति की रिपोर्ट 1964
10. विधि विषय पर अखिल भारतीय सेमीनार, 1972 के विचार
11. विं अ० आ० पाठ्यक्रम विकास रिपोर्ट, 1988–90, प्रो० उपेन्द्र वर्खरी के सभापतित्व में (800 पृष्ठों में 2 भाग)

12. न्या० अहमदी समिति रिपोर्ट, 1994

हम इस सूची में विं अ० आ० पाठ्यक्रम विकास समिति रिपोर्ट, 2001 को भी जोड़ना चाहते हैं। यू० के०, यू० एस० ए० और अन्य देशों में विचारात् विश्वविद्यालयों और शैक्षणिक संस्थाओं ने विधि शिक्षा के विषय पर रिपोर्ट प्रस्तुत की हैं। विधि शिक्षा के बारे में अनेक पत्रिकाएं भी हैं। इन सभी रिपोर्टों की प्रतीयां विंअ०आ० तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् के पास उपलब्ध हों इसके लिए उपाय करने होंगे। ये रिपोर्टें विधि शिक्षा विषयक दोनों समितियों के लिए अत्यन्त सहायक हैं।

10.3 भारत में उपरोक्त अनेक समितियों ने विधि के व्यावहारिक पक्ष पर भी बल दिया है। इस संदर्भ में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि आज विदेशों में भी विधि के व्यावहारिक पक्ष पर जोर है और यूँ एस० ए० में इस विषय पर हाल ही में प्राप्त महत्वपूर्ण मेक केट रिपोर्ट उपलब्ध है। (इस रिपोर्ट का नाम 'ला स्कूलस एण्ड प्रोफेशन : नेरोइंग द गेप' (1992) है और इसे अमरीका के वकील संघ के टास्क फोर्स की रिपोर्ट भी कहा गया है। यह रिपोर्ट 1994 की फरवरी में ए बी० ए० हाउस आफ डेलीगेट्स के पश्चातवर्ती संकल्पों का विषय भी रही है। यह रिपोर्ट 1994 की फरवरी में ए बी० ए० हाउस आफ डेलीगेट्स के पश्चातवर्ती संकल्पों का विषय भी रही है और इसके अतिरिक्त एक और पश्चातवर्ती रिपोर्ट है जिसका नाम 'रिपोर्ट आन लर्निंग प्रोफेशनलिज्म' (1996) (शिकाया है। इसके अतिरिक्त 'प्रीप्रेटरी स्कूलस', विषय पर आकलैण्ड, 1990, रिव्यू आफ द इन्स्टीट्यूट आफ प्रोफेशनल लीगल स्टडीज इलैण्ड और वेल्स विधि सोसायटी का अध्ययन भी है।) यूँ एस० केम्प्टन रिपोर्ट 1979 (ए बी० ए०); केरिंगटन रिपोर्ट आन ट्रीनिंग फार पब्लिक प्रोफेशन्स आफ द ला (1971) (वाशिंगटन) भी है। सुना है कि नेशनल ला स्कूल बंगलौर ने भी हार्डवार्ड तथा मेक केट के माडलों के आधार पर नया पाठ्यक्रम तैयार किया है।

10.4 इनके अतिरिक्त विधि शिक्षा पर अनेक महत्वपूर्ण पत्रिकाएं भी हैं। उदाहरण के लिए एसोसिएशन अमेरिकन ला स्कूल (ए ए एल एस) द्वारा प्रकाशित जनरल आफ लीगल एज्यूकेशन (यूँ एस० ए०) ऐसी ही विष्यात पत्रिकाएं हैं और इन पत्रिकाओं में गत एक दशक से अधिक से इस विषय पर सैंकड़ों लेख निकले हैं। इन पत्रिकाओं में विधि शिक्षा पर पुस्तकों की समीक्षाएं भी हैं इसके अतिरिक्त भारत में और विदेशों में विधि शिक्षा के विषय पर न्यायाधीशों, वकीलों और शिक्षाविदों के लेखों का बहुत साहित्य भी है।

10.5 यह प्रतीत होता है कि यूँ एस० ए० में 1989-92 के दौरान अमेरिकन एसोसिएशन आफ ला स्कूल्स ने पाठ्यक्रम में 20 नये विषय जोड़े थे। (देखिए 'न्यू कोर्स आफरिंग्स इन इ अपर लेविल करीक्यूलम' – लेखक डेबोरा- जान्स मेरिट तथा जेनिफर साइटन (भाग 47), जनरल आफ लीगल एज्यूकेशन 1997, पृष्ठ 524) यूँ एस० ए० में पाठ्यक्रम और अनुसंधान समिति की बैठक हर तीन या चार वर्ष पर होती है जिसमें स्थिति का पुनरीक्षण किया जाता है (वही पृष्ठ 569)। पादिट्पण संख्या 149 में पाठ्यक्रम अध्ययन विषय पर लेखों और अध्ययनों की एक लम्बी सूची दी गई है।)

10.6 विधि आयोग ने विधि शिक्षा के विषय पर उपरोक्त साहित्य का उल्लेख केवल इस बात पर जोर देने की दृष्टि से किया है कि हर कोई यह समझ जाए कि विधि शिक्षा ऐसा विषय है जिस पर विधि शिक्षा समितियों के सदस्यों को गहराई से अध्ययन और अनुसंधान करने की आवश्यकता है जिससे कि उक्त जानकारी का लाभ हमारे विधि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों को प्राप्त हो सके तथा अध्ययन की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए और ऐसे विद्यार्थी तैयार करने के लिए उपाय किए जा सकें जो अंतरराष्ट्रीय मानकों के समकक्ष हों।

10.7 यह सत्य है कि हाल ही में विभिन्न राज्यों में—हैदराबाद, जोधपुर, भोपाल, कलकत्ता आदि में कुछ विशिष्ट संस्थान आरम्भ किए गए हैं। ये कानूनी विधि विश्वविद्यालय नेशनल ला स्कूल बंगलौर के माडल पर आरम्भ किए गए हैं। वास्तव में न्यू अहमदी समिति ने 1994 में ऐसे संस्थान खोलने की आवश्यकता के बारे में सिफारिश की थी। ऐसे संस्थान प्रत्येक राज्य में, आज विधि शिक्षा की उत्कृष्ट छवि प्रस्तुत कर रहे हैं। (दुर्भाग्यवश इनके अधिकांश विद्यार्थी बड़ी कम्पनियों में नौकरियां कर रहे हैं और बहुत कम विधि व्यवसाय में जा रहे हैं। हो सकता है कि कम्पनियों को भी सुप्रशिक्षित कार्मिकों की आवश्यकता हो। अन्यथा इन कम्पनियों को कानूनी परामर्श के लिए भारत के बाहर जाना पड़ सकता है किन्तु इन विधि स्नातकों में से अधिकांश को विधि व्यवसाय में जाने के लिए समझाया जाना चाहिए।) तथापि, हम केवल कुछ स्टार महाविद्यालयों से संतोष नहीं कर सकते। हमें पूरे देश में अनेक नगरों और जिला मुख्यालयों में चल रहे शेष सेकड़ों विधि महाविद्यालयों के बारे में भी चिंता करनी होगी। इनसे निकले विद्यार्थी ही वकालत के व्यवसाय में बड़ी संख्या में निम्नतर स्तर पर आते हैं। विधि आयोग की इच्छा है कि भारतीय तथा शिक्षाविदों के समुदाय को सहयोग करना चाहिए और ऐसे कदम उठाने चाहिए जिनसे इन महाविद्यालयों में, जो कि सारे देश में फैले हुए हैं, विधि शिक्षा के स्तर में वृद्धि की जा सके। केवल कुछ चमकदार स्टार महाविद्यालय, जिनमें अखिल भारत से चयन के आधार पर लिए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या सीमित है, अंतिम उद्देश्य नहीं हो सकते और इससे विधि शिक्षा के स्तर में सम्पूर्ण परिवर्तन का परिणाम प्राप्त नहीं हो सकता।

10.8 महाविद्यालयों से निकलने वाले विधि विद्यार्थियों पर ही विधि व्यवसाय का भविष्य है। विधि व्यवसाय पर न्यायपालिका की गुणवत्ता निर्भर है। 3 वर्ष विधि व्यवसाय कर लेने पर विधि व्यवसायी अधिकांश

राज्यों में मुंसिफ के स्तर पर न्यायिक अधिकारी बनने के लिए सक्षम हो जाता है। (उच्चतम न्यायालय ने हाल ही में कहा है कि विधि स्नातक सीधा न्यायिक अधिकारी बन सकता है।) सात वर्ष का अनुभव होने पर व्यक्ति, अधिकांश राज्यों में, सीधे ही जिलासत्र न्यायाधीश के रूप में नियुक्त का पात्र हो जाता है और ऐसे न्यायाधीश सिविल मामलों में असीमित धनीय सीमा की अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है और मुत्यु दण्ड की सिफारिश कर सकता है। कितना बड़ा जूआ है। अतः पाठ्यक्रम को मजबूत बनाने की ओर मजबूत नींव रखने की आवश्यकता है। विधि शिक्षा को गंभीरता से लेना होगा और एक अन्य स्तर पर रखना होगा।

10.9 अतः हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 में निम्नलिखित रूप में खण्ड (झल्ला) जोड़ा जाए:

"(झल्ला). भारतीय विधिश्व परिषद् के और सभी राज्य विधिश्व परिषदों के कार्यालयों तथा विश्वविद्यालयों और विधि महाविद्यालयों में विधि शिक्षा कार्यालयों की स्थापना करके विधि शिक्षा के अद्यतन स्वरूपों के बारे में जागृति पैदा करना।"

अध्याय XI

विश्वविद्यालय की मान्यता और महाविद्यालय की संलग्नता की समाप्ति

धारा 7 (1) (झ) में विश्वविद्यालय की मान्यता समाप्त करने से संबंधित उपबंध का उपान्तरण जिससे कि विधि शिक्षा प्रदान करने वाले विश्वविद्यालयों अथवा किसी विशेष संस्थान/ महाविद्यालय की मान्यता को समाप्त किया जा सके।

11.0 अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1) (झ) भारतीय विधिज्ञ परिषद् को उन विश्वविद्यालय को मान्यता प्रदान करने के लिए समर्थ बनाती है जिनकी विधि की उपाधि अधिवक्ता के रूप में नामांकित किए जाने के लिए पर्याप्त अर्हता होगी। इस समय उन महाविद्यालयों की बड़ी संख्या है जो प्रत्येक विश्वविद्यालय के अंतर्गत विधि शिक्षा प्रदान करते हैं। इस समय अधिनियमों के अंतर्गत स्थापित विधि विश्वविद्यालय भी हैं।

11.1 प्रश्न यह है कि उस समय क्या किया जाए जब कोई विधि महाविद्यालय विहित मानकों के अनुरूप न हो अथवा भारतीय विधिज्ञ परिषद् के निदेशों का उल्लंघन करे और उक्त परिषद् उस महाविद्यालय की मान्यता को समाप्त करना चाहे। धारा 7 (1) का खण्ड (झ) केवल विश्वविद्यालय की मान्यता को प्रदान करने का उपबंध करता है। इसमें मान्यता का समाप्त किया जाना भी सम्भित है। ऐसा संदेह व्यक्त किया गया है कि क्या विश्वविद्यालय के अंतर्गत किसी एक महाविद्यालय की गलती के कारण उस विश्वविद्यालय की मान्यता समाप्त की जानी चाहिए जिसके अंतर्गत वह महाविद्यालय है। यह विचार व्यक्त किया गया है कि ऐसी स्थिति में यदि भारतीय संबंधित विश्वविद्यालय से यह अपेक्षा करे कि वह ऐसे महाविद्यालय की संलग्नता को वापिस ले ले तो ऐसा करना पर्याप्त होगा। हाँ, यदि कोई विश्वविद्यालय भारतीय के निदेशों का उल्लंघन करता है तो ऐसी दशा में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या विश्वविद्यालय की मान्यता ही समाप्त कर दी जाए।

11.2 इस विचार विमर्श के संबंध में धारा 7 (1) (झ) में संशोधन करने की आवश्यकता है जिससे कि भारतीय को किसी विश्वविद्यालय की मान्यता को समाप्त करने की अथवा भारतीय की विधि शिक्षा समिति के परामर्श से, किसी विधि महाविद्यालय की संलग्नता को समाप्त करने के लिए किसी विश्वविद्यालय को निदेश देने की शक्ति प्रदान कर दी जाए।

11.3 हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 (1) (झ) के स्थान पर निम्नलिखित उपबंध रखा जाना चाहिए:

“(झ) उन विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करना जिनकी विधि की उपाधि अधिवक्ता के रूप में नामांकित किए जाने के लिए अर्हता होगी अथवा ऐसे विश्वविद्यालय की मान्यता को समाप्त करना अथवा किसी विश्वविद्यालय को यह निदेश जारी करना कि वह विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के परामर्श से किसी विधि महाविद्यालय की संलग्नता को समाप्त कर दे।”

हम यह सिफारिश भी करते हैं कि धारा 49 (1) में निम्नलिखित खण्ड अंतः स्थापित किया जाना चाहिए:-

“(क्य). धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (झ) में यथानिर्दिष्ट किसी विश्वविद्यालय को मान्यता प्रदान करने और उसकी मान्यता को समाप्त करने की बाबत प्रक्रिया और किसी विधि महाविद्यालय की संलग्नता समाप्त करने के लिए किसी विश्वविद्यालय को निदेश जारी करने की बाबत प्रक्रिया।”

अध्याय XII

प्रशिक्षण और प्रशिक्षित

12.0 अधिवक्ता अधिनियम, 1961 के अधिनियमित होने से पूर्व एक प्रणाली चल रही थी जिसके अंतर्गत विधि स्नातकों को किसी वकील के चेम्बर में एक वर्ष तक प्रशिक्षण के रूप में प्रशिक्षण ग्रहण करना और विधिज्ञ परिषद् द्वारा संचालित सिविल प्रक्रिया, 1908 तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के विषयों में विधिज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही कोई विधि स्नातक अधिवक्ता के रूप में नामांकित किए जाने का पात्र हो सकता था। (1961 से पहले, नामांकित करने के लिए संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के न्यायालय में आवेदन करना होता था और ऐसे आवेदन उस उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा ही किया जा सकता था। उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के चेम्बर में एक संक्षिप्त साक्षात्कार की प्रथा भी थी और उसके पश्चात् ही उसी दिन खुले न्यायालय में नामांकित किए जाने के लिए आवेदन लाया जा सकता था।)

12.1 अधिवक्ता अधिनियम, 1961 लागू होने के पश्चात्, धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (घ) के आधार पर प्रशिक्षित की प्रक्रिया जारी रही (तथापि, नामांकित करने का कार्य राज्य विधिज्ञ परिषद् की नामांकन समिति के समक्ष दाखिल करने का उपबंध किया गया था।) इस उपबंध में यह अपेक्षा की गई थी कि विधि स्नातकों को “विधि में प्रशिक्षण का एक पाठ्यक्रम पूरा करना होगा और ऐसे प्रशिक्षण के पश्चात् परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी और उसके पश्चात् ही उसे नामांकित किया जा सकता था। कठिपय श्रेणियों के व्यक्तियों को उक्त उपखण्ड के परन्तुक के अंतर्गत छूट प्रदान की गई थी।

12.2 1964 में धारा 24 में कुछ संशोधन किए गए किन्तु उनका उल्लेख आवश्यक नहीं है क्योंकि 1973 में अधिनियम संख्यांक 60/73 द्वारा धारा 24 के उपखण्ड (1) के खण्ड (घ) का लोप कर दिया गया और परन्तुक में किए गए 1964 के संशोधनों का भी लोप कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि 1973 के पश्चात् न तो प्रशिक्षण की ओर न विधिज्ञ परीक्षा की आवश्यकता रह गई।

12.3 फिर भी राज्य विधिज्ञ परिषदों की नियम बनाने की शक्ति से संबंधित एक और संशोधन रहा आया। फिर 28 (2) (ख) में से प्रशिक्षण और विधिज्ञ परीक्षा की बाबत नियम बनाने की राज्य विधिज्ञ परिषद् की शक्ति से संबंधित उपबंध का भी 1973 के अधिनियम 7 द्वारा लोप कर दिया गया।

12.4 1994 में, भारत के मुख्य न्यायाधिपति श्री एन.एन. बैंकटचल्लया ने विधि शिक्षा पर अहमदी समिति का गठन किया। इस समिति में न्या.ए.एम. अहमदी, श्री बी.एन. कृष्णल और एक न्या. श्री एम. जगन्नाथराव थे। कमेटी ने सभी उच्च न्यायालयों को उनके विचार जानने के लिए लिखा। लगभग सभी मुख्य न्यायाधिपतियों ने यह विचार व्यक्त किया कि विद्यार्थियों के स्तर में तथा वकीलों के कौशल में हास को ध्यान में रखते हुए स्नातकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम का पुनः आरम्भ करने की आवश्यकता थी और यह कार्य भारतीय विधिज्ञ परिषद् को करना था। कमेटी को राज्य विधिज्ञ परिषदों तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् से भी प्रत्युत्तर प्राप्त हुए।

12.5 1994 में अहमदी कमेटी की रिपोर्ट के पश्चात भा.वि.प. ने 1973 के निर्णय पर पुनः विचार किया और यह विनिश्चय किया कि स्नातक होने के पश्चात् एक वर्ष के प्रशिक्षण को पुनः आरम्भ किया जाए। तदनुसार उक्त परिषद् ने 1994 के पश्चात् नियम बनाए और उन नियमों के स्थान पर 19.7.98 में नये नियम बनाए गए। इन नियमों के उच्चतम न्यायालय में चुनावी दी गई। उच्चतम न्यायालय ने वी. सुधीर बनाम भारतीय विधिज्ञ परिषद् 1999 (3) एस.सी.सी. 176 में इस प्रश्न पर विचार किया कि उस विधिज्ञ इतिहास को ध्यान में रखते हुए जिससे प्रकट होता है कि अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों के अनुसार प्रशिक्षण एक भाग था, क्या उसे पुनः भारतीय विधिज्ञ परिषद् के नियमों के आधार पर आरम्भ नहीं किया जा सकता। न्यायालय ने निर्णय दिया कि जब एक बार धारा 24 (1) (घ) के सुसंगत कानूनी उपबंधों या उसके परन्तुक का लोप कर दिया गया

और जब प्रशिक्षण के विषय को भी, जो कि धारा 28 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) में गिनाई गई एक मद थी, 1973 में निरसित कर दिया गया (धारा 28 का संबंध नियम बनाने से था) तब भा.वि.प. प्रशिक्षण के संबंध में कोई नियम नहीं बना सकती थी और इस शर्त को केवल विधान मण्डल ही अधिनियम पुरस्थापित करके पुनः ला सकता था। यह निर्णय भी दिया गया कि राज्य विधिज्ञ परिषद् ही प्रशिक्षण को पुनः आरम्भ कर सकती थी और भा.वि.प. स्वयं प्रशिक्षण आरम्भ नहीं कर सकती थी।

12.6 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय ने बी० सुधीर के मामले में केवल इस बात पर विचार किया था कि नये नियम अधिनियम के उपबंधों का उल्लंघन करते थे या नहीं। न्यायालय ने यह कहीं भी नहीं कहा कि प्रशिक्षण आवश्यक नहीं था बल्कि उसने दूसरी ओर प्रशिक्षण को पुनः आरम्भ करने की आवश्यकता का समर्थन किया और अहमदी समिति की सिफारिशों को स्वीकार किया। न्यायालय ने (पृष्ठ 210-211 पर) कहा—

“इस विषय पर चर्चा समाप्त करने से पूर्व यह ध्यान देना आवश्यक है कि उन विभिन्न न्यायालयों के, जिनमें व्यक्ति उस समय से विधि व्यवसाय कर रहे हैं जब से अधिवक्ता अधिनियम लागू किया गया था, अनुभव की पृष्ठ भूमि में भारत का विधि आयोग तथा ऐसे अन्य विधेयज्ञ निकाय, जिन्हें विधि शिक्षा के मानकों में सुधार करने के सुझाव देने का कार्य सौंपा गया था, तथा विधि व्यवसायियों ने यह महसूस किया है कि न्यायालयों में प्रवेश करने वाले युवा अधिवक्ताओं के लिए अनिवार्य प्रशिक्षण का उपबंध करना आवश्यक है। इन अधिवक्ताओं को न्यायालय की प्रणाली से अवगत करने की दृष्टि से तथा इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वे भविष्य में न्यायालय के दक्ष अधिकारी बन सकें इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया है कि उन्हें वरिष्ठ अधिवक्ता के अंतर्गत प्रशिक्षण मिलना चाहिए और इस विषय में कोई अन्य विचार नहीं हो सकता। वास्तव में मुख्य न्यायाधीशों की अंतिम कान्फ्रेस में, जो कि दिसम्बर 1993 में हुई थी, विधि महाविद्यालय में प्रवेश, पाद्यक्रम, प्रशिक्षण, न्यायालयों के विभिन्न स्तरों पर विधि व्यवसाय की अवधि आदि के विषय में कुछ सुझाव देने के प्रश्न पर मद 16 के रूप में विचार किया था। कान्फ्रेस ने यह संकल्प किया कि भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश से निवेदन किया जाए कि वह एक समिति का गठन करे जिसके अध्यक्ष माननीय न्यायाधिपति श्री ए.एम.अहमदी हों तथा भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामनिर्देशित हों और सदस्य हों और वह समिति इस विषय में उचित कदम उठाने के बारे में सुझाव दे जिससे कि विधि स्नातक न्यायालयों में विधि व्यवसाय का हकदार होने से पूर्व पर्याप्त अनुभव अर्जित कर सकें। उक्त उच्च-शक्ति-प्राप्त समिति ने मुख्य न्यायाधीशों तथा राज्य विधिज्ञ परिषदों तथा भा.वि.प. के विचार आमंत्रित करने के पश्चात् मूल्यवान सुझाव दिए। विधि शिक्षा के संबंध में सुसंगत सुझाव 1,12,13,15 और 16 हैं जिन पर ध्यान देना आवश्यक है। यह सुझाव निम्नलिखित रूप में है।

1. भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियम, 1965 के अध्ययन III के नियम 4 के अंतर्गत गठित विधिज्ञ परिषद् की ‘विधि शिक्षा समिति’ को विधि शिक्षा के मानक निर्धारित करने समय (1) न्यायपालिका, (2) विधिज्ञ परिषद् और (3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रतिनिधियों की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए। यह प्रस्ताव किया जाता है कि नियमों में संशोधन किया जाए और ऊपर उल्लिखित निकायों को सम्मिलित करने के लिए विधि शिक्षा समिति की पुनः संरचना की जाए।

12. विधिज्ञ परिषद् नियमों के नियम 21 में संशोधन करके ऐसे आज़ापक उपबंध जोड़े जाएं कि प्रत्येक विश्वविद्यालय लेक्वर पद्धति के साथ केस पद्धति, ट्यूटोरियल और विधि शिक्षा प्रदान करने के अन्य आधुनिक तकनीकों को जोड़ने का प्रयास करेंगी और इनमें समस्या पद्धति, नाटकीय न्यायालय, नाटकीय विचारण और अन्य विषयों को सम्मिलित किया जाएगा और उन्हें अनिवार्य बनाया जाएगा।

13. नाटकीय न्यायालय, नाटकीय विचारण और विचार विमर्शों में भाग लेना अनिवार्य होना चाहिए और उनके लिए अंक देने चाहिए (ii) अध्ययन के अंतिम वर्ष में विवादकों, करारों के प्रारूपण का व्यावहारिक प्रशिक्षण विकसित किया जा सकता है, और (iii) विभिन्न स्तरों के न्यायालयों का विद्यार्थियों द्वारा परिदर्शन अनिवार्य होना चाहिए जिससे कि उन्हें अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त हो।

15. बकील संघ में प्रवेश 12 माह या 18 माह की प्रशिक्षुता तथा प्रवेश परीक्षा के पश्चात् दिया जाना चाहिए। राज्य विधिज्ञ परिषदों से अनुज्ञानि/सनद प्राप्त करने के लिए इस बात का प्रावधान होना चाहिए कि विधिज्ञ परिषद् की परीक्षा में कम से कम 50 प्रतिशत या 60 प्रतिशत अंक प्राप्त करना आवश्यक है।

16. जहाँ तक प्रशिक्षुता की एक वर्ष या 18 मास की अवधि के दौरान वरिष्ठ बकील के अंतर्गत प्रशिक्षण का प्रश्न है, अधिनियम में अथवा नियमों में यह बात सम्मिलित की जानी चाहिए कि वरिष्ठ बकील के पास जिला न्यायालय/उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय का कम से कम 10 या

15. वर्ष का अनुभव होना चाहिए तथा विद्यार्थी की डायरी से यह प्रकट होना चाहिए कि उसने सिविल न्यायालय में मूल स्तर पर तीन मास तक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में और तीन मास तक जिला न्यायालय में कम से कम 30 मास तक उपस्थिति रखी है। उस अधिवक्ता को जिसके कार्यालय में किसी विद्यार्थी ने कार्य किया है यह प्रमाणित भी करना चाहिए कि वह विद्यार्थी बकील संघ में प्रवेश करने के योग्य है। जब तक ये औपचारिकताएं पूरी नहीं हो जाती तब तक विद्यार्थी को विधिज्ञ परिषद् परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

12.7 उक्त बातें कहने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने (पृष्ठ 211 पर) निम्नलिखित टिप्पणी भी की है:

“यह सत्य है कि उच्च शक्ति प्राप्त समिति ने इन सुझावों में इस बात पर स्पष्ट रूप से बहुत बल दिया है कि विधि शिक्षा के मानकों में सुधार की तथा इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि विधि व्यवसाय में नये प्रवेशकर्ताओं से यह अपेक्षित है कि उन्हें पर्याप्त व्यावसायिक कौशल और विशेषज्ञता से सशक्ति किया जाए। इस पक्ष के बारे में भी कोई विवाद नहीं हो सकता। तथापि, जैसी कि कहावत है कि “सही बात सही रीति से की जानी चाहिए।” भा.वि.प. ने जिस महान उद्देश्य को लेकर प्रश्नगत नियम बनाए हैं हम उनकी प्रसंशा करते हैं क्योंकि इन नियमों में विधि व्यवसाय में युवा प्रवेशकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विस्तार से उपबंध किया गया है ताकि उन्हें किसी प्रकार से वकील संघ में प्रवेश की प्रारम्भिक अवधि में प्रशिक्षण प्राप्त हो। यह भा.वि.प. का दुर्भाग्य है कि सही बात सही रीति से नहीं की गई है। विधि शिक्षा के मानकों और व्यवसाय में सुधार के उचित तरीकों को तैयार करने के विषय में भा.वि.प. की चिंता में हम भी उतने ही भागीदार हैं। उच्च शक्ति प्राप्त समिति द्वारा की गई उपरोक्त सिफारिशों को उचित रीति से अपनाकर तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा उचित औपचारिकताएं अपनाकर ही व्यावहारिक जामा पहनाया जा सकता था।”

12.8 उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी भी की है कि प्रशिक्षण आरम्भ करने की आवश्यकता एक ऐसा विषय है जिसका निर्णय राज्य विधिज्ञ परिषदों पर नहीं छोड़ा जा सकता। क्योंकि सूचीगत बकील भारत में कहीं भी विधि व्यवसाय कर सकता है अतः प्रशिक्षण और परीक्षा विहित करने की यह शक्ति भा.वि.प. को सौंपी जानी चाहिए जिससे कि प्रशिक्षण एक समान हो सके। उच्चतम न्यायालय ने (पृष्ठ 212-213 पर) विचार व्यक्त किया है कि—

“यह कल्पना करना आसान है कि धारा 7 और धारा 24 (1) में उचित संशोधन करके भा.वि.प. को विधि व्यवसाय में भविष्य में प्रवेश करने वालों के लिए नामांकित पूर्व प्रशिक्षण के लिए उपबंध करने की उचित शक्ति प्रदान की जा सकती है। ऐसा करने से ऐसी कानूनी खुली जड़ी जा सकती थी जिस पर उचित नियम बनाए और टांगे जा सकते थे। इस संबंध में इस बात पर ध्यान देना भी आवश्यक है कि वे केवल राज्य विधिज्ञ परिषदों को नामांकित पूर्व प्रशिक्षण और परीक्षा के लिए उपबंध करने के प्रश्न को छोड़ देने से एक अखिल भारतीय कानून के कार्यकरण में कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं। यह करने की आवश्यकता नहीं है कि नामांकित अधिवक्ता भारत में किसी भी न्यायालय में विधि व्यवसाय करने का हकदार है अतः अधिनियम के अंतर्गत नामांकित सभी अधिवक्ताओं के लिए व्यावसायिक विशेषज्ञता के मानक स्तर तथा एक समान विधि प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। इन परिस्थितियों में, भा.वि.प. को उचित कानूनी शक्ति सौंपी जानी चाहिए जिससे कि वह संबंधित राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा अपनाई जाने वाली नामांकन प्रणाली को समान रीति से लागू करने की बात का अधीक्षण कर सके। यह कल्पना

करना संभव है कि यदि नामांकित पूर्व प्रशिक्षण और परीक्षा विहित करने की शक्ति केवल राज्य विधिज्ञ परिषदों को प्रदान की जाती है तो यह हो सकता है कि एक राज्य विधिज्ञ परिषद् नामांकित प्रशिक्षण की शर्त लगाएँ और दूसरी विधिज्ञ परिषद् ऐसी शर्त न लगाए और ऐसी स्थिति में भविष्यत व्यवसाय के लिए, जिसके पास अपेक्षित विधि उपाय है, उस राज्य विधिज्ञ परिषद् से अधिवक्ता के रूप में नामांकित होना आसान होगा जिसने नामांकित पूर्व प्रशिक्षण की शर्त नहीं लगाई है और वहां नामांकित होने के पश्चात् वह अधिनियम के अंतर्गत कानूनी तौर पर विधि व्यवसाय करने का हकदार होने के कारण भारत के किसी भी न्यायालय में विधि व्यवसाय आरम्भ कर सकता है। इस प्रकार की अवांछित स्थिति से बचने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप, नामांकित पूर्व प्रशिक्षण के आदर्श सिद्धांत से विधिज्ञ रूप से बचा जा सकता है, यह नितांत आवश्यक है कि भा.वि.प. को उचित कानूनी शक्ति प्रदान की जाए जिससे कि वह अधिवक्ताओं के लिए अखिल भारतीय आधार पर नामांकित पूर्व प्रशिक्षण तथा उन्हें सुदृश और न्यायालय के सुजात अधिकारी बनने के लिए अपेक्षित प्रशिक्षुता विहित करने और उसके लिए उपबंध करने में समर्थ हो जाए और न्याय के बेहतर प्रशासन का उद्देश्य प्राप्त हो जाए। अतः, हम अधिनियम में इस संबंध में उचित संशोधन करने की ठोस सिफारिश करेंगे।"

12.9 उच्चतम न्यायालय ने सुझाव दिया कि इससे पूर्व कि प्रशिक्षण आरम्भ करने के लिए अधिनियम में उपरोक्त रूप में संशोधन किया जाए, नामांकन के पश्चात् नये प्रवेशकर्ताओं को कम से कम एक वर्ष का अंतरंग प्रशिक्षण देने की व्यवस्था अस्थाई उपाय के रूप में की जा सकती है।

12.10 उच्चतम न्यायालय ने अपनी सिफारिशों के पैरा 34 में भारतीय विधिज्ञ परिषद् का प्रतिनिधित्व करने वाले विधि परामर्शी की तारीख 24.9.1997 के पत्र का उल्लेख भी किया है जिसमें उन सुझावों में एक वर्ष के प्रशिक्षण कार्यक्रम और एक व्यावसायिक परीक्षा को भी सम्मिलित किया गया है। पैरा 5 में कुछ और सुझाव भी दिए गए थे जो उन विधियों के संबंध में हैं जिन्होंने सालीसिटरों के कार्यालयों में अथवा कम्पनियों के वकीलों के रूप में कार्य किया है।

हम निर्णय के पृष्ठ 213 पर की गई निम्नलिखित टिप्पणियों का उल्लेख करना चाहते हैं:-

"अतः हम इस विषय में अधिनियम में उचित संशोधन करने की ठोस सिफारिश करते हैं।"

12.11 'भारत के उच्चतम न्यायालय की विनिर्दिष्ट सिफारिश को या वस्तुतः निदेश को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम और परीक्षा से संबंधित उपबंधों को पुनः लागू किया जाए।'

12.12 कामनवेल्थ लीगल एज्यूकेशन सोसायटी यू.के. की ओर से प्रकाशित "डायरेक्टरी आफ कामवेल्थ ला स्कूल्स, 2003/2004" में दी गई जानकारी के अनुसार, आस्ट्रेलिया, बंगलादेश, कनाडा, हांगकांग, मलेशिया, न्यूजीलैण्ड, पाकिस्तान, सिंगापुर, दक्षिण अफ्रीका और यू.के. जैसे अधिकांश देशों में विधि व्यवसाय में प्रवेश करने से पूर्व विद्यार्थी के लिए कुछ अवधि का प्रशिक्षण या प्रशिक्षुता तथा विधिज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करना और पाठ्यक्रम पूरा करना कानूनी रूप से आवश्यक है। अन्य देशों में, जैसे बोत्सवाना, केमरून, केरीवियन, गवाली, माल्टी, मारिशस, नामिबिया, नाइजीरिया, पपुआ-न्यूगिनी तथा जाम्बिया में भी यही स्थिति है।

नेशनल ला स्कूल बंगलौर में हाल ही में 12.8.2002 को समस्त भारत के संकायों की काम्प्रैस में वकीलों तथा न्यायाधीशों में प्रशिक्षुता के बारे में अपने विचार व्यक्त किए। वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के.के. वेणुगोपाल का कथन था कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विद्यार्थियों में से 90 प्रतिशत मुफ्सिल क्षेत्रों या जिला मुख्यालयों में स्थित न्यायालयों के वकील संघों में प्रवेश करेंगे और इस संभावना को ध्यान में रखते हुए और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि विद्यार्थी उन क्षेत्रों में स्थित विभिन्न महाविद्यालयों से निकलकर आये हैं, ऐसे विद्यार्थियों के लिए विधि उपाय प्राप्त करने के पश्चात् और विधि व्यवसाय करने के पूर्व प्रशिक्षुता और विधिज्ञ परीक्षा अवश्य पुनः आरम्भ की जानी चाहिए।

12.13 इसमें संदेह नहीं कि हाल ही में, कुछ विधि विद्यालय अपने विद्यार्थियों को विभिन्न वरिष्ठ वकीलों के चेम्बरों में अथवा दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, चेन्नई आदि नगरों में विधि फर्मों में प्रत्येक वर्ष कुछ सप्ताह के लिए कार्य करने के लिए प्लेसमेंट भेजते हैं। 'प्लेसमेंट' की यह पद्धति अच्छी है और इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए किन्तु इस बात पर ध्यान जाना चाहिए कि उच्चतम विधि विद्यालयों के जिनकी संख्या

लगभग 10 या 20 हो सकती है—केवल कुछ ही अपने विद्यार्थियों को यह लाभ प्राप्त करा रहे हैं किन्तु शेष 400 से अधिक विधि विद्यालयों के विद्यार्थियों की बहुसंख्या को यह लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। वस्तुतः इन बड़े नगरों में वरिष्ठ अधिवक्ताओं के लिए, 'प्लेसमेंट विद्यार्थियों' की संख्या में वृद्धि करना व्यावहारिक रूप से कठिन है। वरिष्ठ अधिवक्ता को विद्यार्थियों का कोई बड़ा युप भेजकर न तो बोझा लादा जा सकता है और न वरिष्ठ अधिवक्ता बड़ी संख्या में उन्हें लेना स्वीकार करेंगे। अतः विधिज्ञ परिषद् को ही उन विद्यार्थियों का ध्यान रखना होगा जिन्हें बड़े नगरों में वरिष्ठ अधिवक्ताओं के चेम्बरों में प्रवेश नहीं मिल सकता और जो वास्तव में प्लेसमेंट के प्रयोजन के लिए बड़े नगरों में ठहरने का आर्थिक बोझा नहीं उठा सकते। मध्य प्रदेश, उत्तर पूर्व या गुजरात या बिहार दक्षिण के किसी दूर दराज के विद्यालय का विद्यार्थी इन बड़े शहरों में नहीं जा सकता और प्लेसमेंट प्राप्त नहीं कर सकता। अतः विधि आयोग की राय है कि 'प्लेसमेंट' 'प्रशिक्षुता' का स्थान नहीं ले सकता। इसके अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ताओं के चेम्बरों में प्लेसमेंट से इस बात की अंतर्गत जानकारी सदैव नहीं मिल सकती कि मूल स्तर के विचारण न्यायालयों में क्या हो रहा है। विद्यार्थियों को विभिन्न स्तर के न्यायालयों का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त होना चाहिए। यही कारण है कि प्लेसमेंट की प्रक्रिया, जो सभी 400 विधि विद्यालयों के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकती, एक वर्ष की प्रशिक्षुता का प्रभावशील स्थानापन नहीं हो सकती।

12.14 इस संबंध में हम यह इंगित करना चाहते हैं कि विश्व में अनेक देशों में विधि स्नातक को नामांकित करने की ओर सीधे ही विधि व्यवसाय करने की अनुमति नहीं है। उनके लिए एक वर्ष या अधिक के प्रशिक्षण की अवधि है। कुछ देशों में यह अवधि पांच वर्ष तक है। आज भारत में कोई अधिवक्ता एक बार नामांकित हो जाने पर भारत के उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों को भी सीधे सम्बोधित कर सकता है। हम नहीं समझते कि भारत में हमें विधि स्नातकों को बिना किसी प्रशिक्षण के और विधिज्ञ परीक्षा के किसी न्यायालय को सीधे सम्बोधित करने की अनुमति देनी चाहिए।

12.15 इसके और भी ऐसे अनेक उचित कारण हैं जिनके आधार पर किसी स्नातक के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करना और विधिज्ञ परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक है। यह सच है कि पाठ्यक्रम में विधि कौशल के अनेक हिस्सों को सम्मिलित कर लिया गया है किन्तु फिर भी विद्यालय के पाठ्यक्रम में कौशल की शिक्षा तथा न्यायालय में कौशल के वास्तविक प्रयोग के अनुभव के बीच बहुत बड़ा अंतर है। कोई व्यक्ति जब एक बार किसी वरिष्ठ अधिवक्ता के कार्यालय में प्रवेश करता है तथा विचारण के प्रक्रम पर या अपील के प्रक्रम पर किसी विशेष मामले का अध्ययन करता है, वरिष्ठ अधिवक्ता को चेम्बर में तैयारी करते और अनुसंधान करते देखता है अथवा तैयारी या अनुसंधान में उसकी सहायता करता है या साक्षियों की परीक्षा, डिस्कवरी, सिविल मामले में इन्स्पैशन की प्रक्रिया में अथवा अंतर्वर्ती मामलों (जैसे व्यपदेश या रिसीवर आवेदन आदि) में वास्तविक बहस अथवा विचारण के या अपील के अंतिम प्रक्रम पर बहस को देखता है, अथवा किसी दाइण्डक मामले में अग्रिम जमानत के प्रक्रम से लेकर विचारण के पश्चात् बहस के अंतिम प्रक्रम तक की तैयारी को देखता है केवल तब ही वह उस अंतर को जान सकता है जो कौशल के बारे में पढ़ने तथा कौशल का वास्तव में प्रवेश करने के बीच है। व्यवसाय में ऐसे अनेक विधि कौशल हैं जिन्हें वकील के चेम्बर में अथवा न्यायालय में ही सीखा जा सकता है और यह दिन प्रतिदिन सीखे जाते हैं। इन सभी को विद्यालय में नहीं सीखा जा सकता यद्यपि विद्यालय में अध्ययन से विद्यार्थी को कौशल के बारे में थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वास्तव में फैसले में भी अंतर होता है।

12.16 उच्चतम न्यायालय की टिप्पणियों, अहमदी समिति की राय और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश की राय के प्रकाश में तथा इस पृष्ठभूमि में कि विधि शिक्षा प्रणाली को सुधारने की आवश्यकता है, हम अधिनियम में संशोधन करके, प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा विधिज्ञ परीक्षा को पुनः आरम्भ करने की सिफारिश करते हैं।

12.17 एक मजबूत दृष्टिकोण यह है कि यदि कुछ विद्यार्थी अच्छे विधि विद्यालय से निकल रहे हैं तो आगे और किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। यहां हमें उन विद्यार्थियों को ध्यान में नहीं रखना होगा जो बल्कि उन्हें ध्यान में रखना होगा जो नगरों, जिला मुख्यालयों और अन्य मुफ्सिल क्षेत्रों में विभिन्न अन्य स्थानों के महाविद्यालयों से बड़ी संख्या में निकल रहे हैं। यही वे विद्यार्थी हैं जो नामांकन के पश्चात् मूल स्तर के न्यायालयों में जाते हैं। नामांकित व्यक्तियों के पूर्व

प्रशिक्षण और परीक्षा की बाबत नियमों को केवल कुछ विद्यार्थियों तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उन्हें सब पर लागू करना होगा। उच्चतम न्यायालय ने सुधीर के मामले में केवल दो प्रकार के मामलों में छूट का सुव्यवस्था दिया था—वे जिनका प्रशिक्षण सोलारीसिटर के कार्यालय में हो चुका हो, अथवा कम्पनी कार्य में हो चुका हो किन्तु हमने इस पहलू पर विचार किया है और हम भानकों की गिरावट के परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए किसी छूट की सिफारिश नहीं कर रहे हैं।

12.18 प्रशिक्षण के विरोध में कुछ और आपत्तियां भी उठाई गई हैं—कुछ का कहना है कि विद्यार्थी किसी वरिष्ठ वकील के चेम्बर में उपस्थित रहने के दौरान या न्यायालय में हाजिर रहने के पश्चात् उन डायरियों में बनावट कर सकते हैं जो उन्हे रखनी होंगी। कुछ का कहना है कि बहुत कम वरिष्ठ वकीलों के पास युवा स्नातकों से बातचीत करने का समय है। हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि ये आपत्तियां सुसंगत हैं। यदि कुछ विद्यार्थी ऐसे हैं जो प्रशिक्षण को गंभीरता से नहीं लेते अथवा यदि ऐसे कुछ वरिष्ठ अधिवक्ता हैं जो इन प्रशिक्षणों को अपने चेम्बर में ले तो लेते हैं किन्तु उनके पास समय नहीं है किन्तु इन कारणों से हम प्रणाली को दोष नहीं करते और क्यों यही आलोचक वरिष्ठ वकीलों के साथ प्लेसमेंट का समर्थन कर रहे हैं। यह देखने की बात है कि ऐसी ही प्रणाली चार्टरित अकाउंटेंटों की दशा में संतोषप्रद रूप से चल रही है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा स्नातक को भी एक वर्ष तक 'हाउसमेनशिप' पूरी करनी होती है। हमें ऐसा कोई सही कारण नहीं दिखाई देता कि विधि स्नातक को ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए।

12.19 एक और आपत्ति है कि विद्यार्थी महाविद्यालय स्तर पर पांच वर्ष व्यतीत कर चुका है अतः रोजी रोटी कमाने के उसके अधिकार को एक वर्ष और स्थगित नहीं किया जाना चाहिए। हम सहमत नहीं हैं। एक बार न्यायालय में विधि व्यवसाय आंभ करने के पश्चात् विद्यार्थी को उन व्यक्तियों के महत्वपूर्ण अधिकारों के विषय में कार्य करना होता है जो न्यायालय आते हैं, जैसे कि सिविल अधिकार या संवैधानिक अधिकार या किसी दाण्डक मामले के अभियुक्त व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित अधिकार। कानूनी नोटिस तैयार करते समय एक छोटी सी भूल पूरे मामले का नाश कर सकती है या दावे में अथवा लिखित प्रत्युत्तर में किसी त्रुटि के परिणामस्वरूप व्यक्ति मुकदमा हार सकता है। प्रति परीक्षा में एक भी गलत सवाल किसी पक्षकार के लिए सिविल मामले में हारने का मूल कारण बन सकता है या उसके कारण किसी दाण्डक मामले में सिद्धकोष ठहराया जा सकता है हमारा मत है कि 'विधि व्यवसाय' एक ऐसा व्यवसाय है जो कम से कम उतना ही गंभीर है जितना कि चार्टरित अकाउंटेंट या चिकित्सक का व्यवसाय। दुर्भाग्यवश, गत पांच दशाब्दियों में हर कोई यह समझने लगा है कि विधि परीक्षा उत्तीर्ण करना आसान है तथा किसी को कितना भी प्रशिक्षण दिया जाए या कितना भी ज्ञान हो अथवा कैसे भी साधन हों उसके लिए व्यवसाय में सफलता प्राप्त करना कठिन नहीं है। ऐसे ही विचारों के कारण व्यवसाय की गुणवत्ता नष्ट होती है।

12.20 आगे हम इस विषय के एक दूसरे पक्ष का उल्लेख करना चाहेंगे। आल इण्डिया जजेज एसोसिएशन बनाम भारत संघ, 2002(3) स्केल 291 में हाल ही में उच्चतम न्यायालय के दिए गए निर्णय में एक निर्देश दिया गया था कि महाविद्यालय से निकले हुए विधि स्नातक न्यायिक सेवा में निम्नतर स्तर पर सीधे प्रवेश के लिए समर्थ होने चाहिए और उनसे यह अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए कि उनके पास विधि व्यवसाय का 3 वर्ष का न्यूनतम अनुभव हो। किंतु सेवा में प्रवेश के पश्चात् उन्हें एक वर्ष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

12.21 हमने उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय का उल्लेख प्रशिक्षण से संबंधित प्रश्न के संदर्भ में किया है। यदि कुछ राज्यों में यह प्रस्तावित है कि विधि स्नातकों को सीधे भर्ती किया जाए, जैसी कि उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की है, तो नामांकित को कम से कम एक वर्ष की प्रशिक्षित और विधिज्ञ परीक्षा निश्चित रूप से लाभप्रद होगी तथा वास्तव में यह आवश्यक होगी।

12.22 हम यह संकेत भी करना चाहते हैं कि कुछ देशों में प्रशिक्षण तथा विधिज्ञ शिक्षा के अतिरिक्त यह भी अपेक्षित है कि विधिज्ञ परिषद् द्वारा विधि व्यवसाय करने के लिए मंजूर की गई अनुज्ञा का समय-समय पर नवीकरण किया जाए। सतत् विधि शिक्षा के पाठ्यक्रमों को पूरी करने की कानूनी अपेक्षा भी है। हमारे यहां ऐसी प्रणाली नहीं है। इस दृष्टि से नामांकित से आंभ में ही एक वर्ष के प्रशिक्षण तथा विधिज्ञ परीक्षा पर जोर देने के विरुद्ध, हमारे मत में, कोई गंभीर आपत्ति नहीं हो सकती।

12.23 हम तदनुसार, भा.वि.प. द्वारा प्रशिक्षण और विधिज्ञ शिक्षा को निम्नलिखित रूप में पुनः आंभ किए जाने की सिफारिश करते हैं:

(क) धारा 7 की उपधारा (1) में खण्ड (जक) का निम्नलिखित रूप में अंतःस्थापनः

"(जक) विधि व्यवसाय के लिए यह सुनिश्चित करना कि विधि व्यवसाय के लिए नामांकन के इच्छुक अप्यर्थियों को, विधि व्यवसायियों के साथ संलग्न करके, पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है तथा धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (घ) के उपबंधों के अनुसार, ऐसे विद्यार्थियों के लिए विधिज्ञ परीक्षा के संचालन से संबंधित विषयों के लिए उपबंध करना।"

(ख) धारा 24 की उपधारा (1) में, निम्नलिखित रूप में, खण्ड (घ) का अंतःस्थापनः

"(घ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज्ञ) के अधीन मान्यता प्राप्त विधि उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वह किसी विधि व्यवसायी के साथ संलग्न रहकर, जिसे दस वर्ष से अधिक का अनुभव है, किसी अवधि तक, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, प्रशिक्षण प्राप्त करता है और ऐसी रीति से जो भा.वि.प. द्वारा विहित की जाए, सिविल परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर लेता है।"

(ग) धारा 49 में, निम्नलिखित रूप में, खण्ड (कज्ञ) का अंतःस्थापनः

"(कज्ञ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (जक) तथा धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (घ) के अंतर्गत प्रशिक्षण की अवधि तथा विधिज्ञ परीक्षा का संचालन और उनसे संबंधित विषय;"

अध्याय XIII

सेवा से पदच्युत या हटाए गए कर्मचारियों की निरहता तथा धारा 24 क

13.0 ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ समय से भारतीय विधिपूर्ण परिषद् कलिपय ऐसे विधि स्नातकों के व्यवसाय में प्रवेश की अनुमति देने की वर्तमान प्रणाली से संतुष्ट नहीं है जिन्हें किसी न्यायालय ने सिद्धदोष ठहराया है अथवा जो सेवा में रहते हुए, नैतिक अधमता के आधार पर सेवा से हटा दिए गए हों या पदच्युत कर दिए गए हों।

13.1 धारा 24क नामांकन के लिए निरहता से संबंधित है। उक्त धारा (1) के खण्ड (क) और (ख) के अनुसार, उस व्यक्ति को अधिवक्ता के रूप में नामांकित नहीं किया जा सकता जो नैतिक अधमता संबंधित अपराध के लिए या अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 के उपबंधों के अधीन सिद्धदोष ठहराया गया है। इसी प्रकार से खण्ड (ग) के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को राज्य के अधीन नियोजन से या पद से पदच्युत किया गया है या हटाया गया है अथवा उनके विरुद्ध नैतिक अधमता से संबंधित कोई आरोप है तो अधिवक्ता के रूप में उसका नामांकन नहीं किया जा सकता किन्तु वर्तमान में, धारा 24क (1) में एक परन्तुक है जो ऐसे विधि स्नातक को, जिसे सिद्धदोष ठहराया गया है या सेवा से पदच्युत किया गया है, जेल से उसकी निर्मुक्ति की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् उसकी पदच्युति या हटाए जाने की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पश्चात् नामांकन के लिए समर्थ बनाता है। धारा 24क (1) का उक्त परन्तुक निम्नलिखित रूप में है:

“परन्तु नामांकन के लिए यथापूर्वोक्त निरहता, उसके निर्मुक्त होने से या पदच्युत या हटाए जाने से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् प्रभावी नहीं रहेंगी।”

इस परन्तुक के पहले एक ‘स्पष्टीकरण’ है जिसका संबंध राज्य के अधीन सेवा से है और जिसमें कहा गया है कि ‘राज्य’ पद का वही अर्थ है जो उसका संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन है।

13.2 धारा 24क के संबंध में कुछ प्रश्न पैदा होते हैं।

आयोग का ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है कि धारा 24क (1) के नीचे दिया गया परन्तुक ऐसे अनेकों व्यक्तियों को, जिन्हें सिद्धदोष ठहराया गया है या नैतिक अधमता से संबंधित आरोपों के लिए सेवा से पदच्युत किया गया है या हटाया गया है, परन्तुक में विर्मिंटप्ट तारीखों से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् व्यवसाय में प्रवेश की अनुमति दे रहा है। भा.वि.प. के निवेदन में यह कहा गया है कि व्यवसाय के लिए उच्च स्तर की नैतिकता तथा आचरण बनाए रखना अपेक्षित है तथा उन व्यक्तियों को, जिनका पूर्व चरित्र खराब है, व्यवसाय में प्रवेश की अनुमति बिलकुल नहीं होनी चाहिए। परिणामस्वरूप, यह कहा गया है कि परन्तुक को निरसित कर दिया जाना चाहिए।

13.3 आयोग का यह मत है कि विधिज्ञ चरित्र और नैतिकता के विषय में कोई छूट अनुशेय नहीं है। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि जिन्हें सिद्धदोष ठहराया गया है या नैतिक अधमता से संबंधित आरोपों के कारण जिनकी सेवाएं समाप्त की गई हैं, जेल से निर्मुक्त होने की तारीख से या पदच्युत किए जाने या हटाए जाने की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् वैसा ही आचरण करना बंद कर देंगे। अतः उनकी निरहता उनके शेष जीवन पर्यन्त बनी रहनी चाहिए, और उन पर लगाई गई पूर्व पाबन्दी से ही विधि व्यवसाय की शुद्धता को बनाए रखने के हित का साधन होगा।

13.4 अतः हमारा यह बलपूर्ण मत है कि धारा 24क (1) के नीचे दिए गए परन्तुक को निरसित कर दिया जाना चाहिए।

13.5 किन्तु इसका एक पक्ष और भी है कि क्या नैतिक अधमता के आधार पर पदच्युति या हटाया जाना भारत के संविधान अनुच्छेद 12 में यथापरिभाषित ‘राज्य’ के अंतर्गत कर्मचारियों की दशा में ही निरहता होनी चाहिए और क्या प्राइवेट नियोजन के अंतर्गत व्यक्तियों पर, जिन्हें सेवा से पदच्युत किया जाए या हटाया जाए ऐसी

निरहता का परिणाम नहीं भुगतना चाहिए। हमें इस बात का कोई उचित कारण दिखाई नहीं देता है कि उन व्यक्तियों को नामांकन की अनुमति दी जाए जो ऐसे निकायों के अंतर्गत सेवा से हटाए जाएं जो निकाय अनुच्छेद 12 के अंतर्गत नहीं आते अथवा जिन्हें नैतिक अधमता से संबंधित आरोपों के कारण प्राइवेट सेवा में से पदच्युत किया जाए या हटाया जाए। वर्तमान स्थिति के अनुसार, धारा 24क (1) ऐसे व्यक्तियों को दो वर्ष के लिए भी निरहत नहीं करती है।

अतः, धारा 24क (1) (म) में से ‘राज्य के अधीन’ शब्दों को निरसित करना तथा स्पष्टीकरण को भी निरसित करना आवश्यक है।

13.6 अतः; हम धारा 24क (1) के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण और परन्तुक को निरसित करने की, तथा धारा 24क (1) के खण्ड (ग) में से ‘राज्य के अधीन’ शब्दों को भी निरसित करने की सिफारिश करते हैं।

(8) मूल अधिनियम की धारा 10अ की उपधारा (4) में, “उसकी प्रत्येक समिति सिवाय अनुशासनात्मक समितियों के ‘शब्दों के स्थान पर’ उसकी प्रत्येक समिति सिवाय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति और अनुशासनात्मक समितियों” के शब्द रखें जाएं।

(पैरा 3.13(6))

(9) वि.अ.आ. की दस सदस्यों की एक विधि शिक्षा समिति का गठन किया जाए जिसमें छह सदस्य प्रो. डीन या प्रधानाध्यापक या समतुल्य रेंक के कार्यरत शिक्षाक्रियों और उसी श्रेणी के दो विधि शिक्षक हों जो सेवा निवृत्त हो चुके हों तथा दो सदस्य कानूनी विधि विश्वविद्यालय के निदेशक/उप कुलपति होने चाहिए। वि.अ.आ. की ‘विधि शिक्षा समिति’ के गठन के लिए धारा 5अ के रूप में एक पृथक् उपबंध निम्नलिखित रूप में जोड़ा जाए।

(पैरा 4.14 और 4.21)

(10) भाविंप की विधि शिक्षा समिति राज्य विंप के साथ परामर्श करेगी और उसे अपने प्रस्तावों को अनंतिम रूप देना होगा। यह बात वि.अ.आ. विधि शिक्षा समिति से आगे और परामर्श करने के प्रयोजन के लिए की जाएगी। तत्पश्चात् उक्त प्रस्तावों को भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति द्वारा वि.अ.आ. की विधिज्ञ शिक्षा समिति को भेजना होगा।

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में धारा 10अ के रूप में एक नई धारा परामर्श की प्रक्रिया के लिए उपबंध करने के वास्ते की जाए।

(पैरा 4.3 और 4.20)

(11) वि.अ.आ. विधिज्ञ शिक्षा समिति अपने सुझावों को भाविंप की विधि शिक्षा समिति के समक्ष रख सके और उसके पास भेज सके उस दशा में, विधिज्ञ परिषद् की समिति पहले राज्य विधिज्ञ परिषद् के साथ परामर्श करेगी और किसी अनन्तिम मंत्र पर पहुंचने के पश्चात् अपने विचार वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति को भेजेगी।

(पैरा 4.4)

(12) भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति और वि.अ.आ. की विधिक शिक्षा समिति के परामर्श की बाबत है और यह प्रस्ताव भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा इसकी स्वीकृति और क्रियान्वयन की बाबत है।

(पैरा 4.15)

(13) भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति, विधि शिक्षा के मानकों से संबंधित कोई प्रस्ताव पारित करते समय पैरा 4.17 में उल्लिखित बातों को ध्यान में रखेगी।

(पैरा 4.17)

(14) विद्यमान धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) में केवल विधि शिक्षा का प्रोन्यन तथा विश्वविद्यालयों और राज्य विधिज्ञ परिषदों के परामर्श से मानक निर्धारण करने की बात कही गई है। विधि शिक्षा का प्रोन्यन तथा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों के अनुसार, जो कि धारा 10 अअ में विनिर्दिष्ट रीति से तैयार की गई है, विधि शिक्षा की मानक अधिकारित करना जैसाकि पैरा 5.24 में उल्लिखित है।

(पैरा 5.24)

(15) वै.वि.स. प्रणालियों को विधि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य विषय बनाना चाहिए।

(पैरा 6.5, 6.6)

(16) उच्चतम न्यायालय, भाविंप, राज्य विधि संस्थान, आई सी ए डी आर तथा ऐसे ही अन्य संगठनों को वैकल तथा न्यायिक अधिकारियों के लिए वै.वि.स. प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ करने चाहिए। यह प्रशिक्षण संक्षिप्त अवधि का जैसे, एक सप्ताह का अथवा एक मास के प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम के रूप में अथवा छह मास/1 वर्ष के डिप्लोमा पाठ्यक्रम के रूप में प्रशिक्षण हो सकता है।

(पैरा 6.11)

अध्याय XIV

सिफारिशों का सार

सिफारिशों का यह सार अध्याय 1 से 13 तक में से संग्रह किया गया है और सुविधा के प्रयोजन से इसे विषयवार प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) क्योंकि भारतीय विधिज्ञ परिषद् से धारा 7 (1) (ज) में कथित के अनुसार सभी विश्वविद्यालयों से परामर्श करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती में अतः धारा 7 (1) (ज), यह विहित करते हुए संशोधन करना होगा कि भा. वि. प. को ऐसे निकाय के साथ परामर्श करना चाहिए जो सभी विश्वविद्यालयों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रतिनिधित्व करता हो तथा ऐसे निकाय का गठन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा किया जाना चाहिए। इसके लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 में संशोधन अपेक्षित है।

(पैरा 2.22)

(2) भारतीय विधिज्ञ परिषद् तथा विश्वविद्यालय के बीच परामर्श की प्रक्रिया सहज तथा प्रभावपूर्ण होनी चाहिए।

(पैरा 2.21)

(3) धारा 7(1)(ज) में “परामर्श” का उपबंध करने के लिए संशोधन किया जाए जैसा कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में जोड़े जाने वाली धारा 10अ अ में प्रस्तावित है।

(पैरा 3.13(1))

(4) धारा 10 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) का संशोधन करना होगा जिससे कि भारतीय विधिज्ञ परिषद् की ऐसी विधि शिक्षा समिति की सदस्यता के लिए उपबंध किया जाए जो विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करे। इस समिति में पांच सदस्य भारतीय विधिज्ञ परिषद् के, उच्चतम न्यायालय का एक सेवा निवृत्त न्यायाधीश, उच्च न्यायालय का एक सेवा निवृत्त न्यायाधिपति/न्यायाधीश, जिनका नाम निर्देशन भारत के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा किया जाएगा, तथा विश्वविद्यालय द्वारा नामनिर्दिष्ट तीन विधि शिक्षक जो कि वि. आ. आ. की प्रस्तावित विधि शिक्षा समिति के सदस्य होने चाहिए तथा सेवारत होने चाहिए और उनमें से एक किसी कानूनी विधि विश्वविद्यालय का निदेशक/कुलपति होना चाहिए। समिति के अध्यक्ष को, अर्थात् उच्चतम न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश को कास्टिंग बोट का अधिकार होगा।

(पैरा 3.13(2))

(5) भारत का अटर्नी जनरल भा.वि.प. की विधि शिक्षा समिति की बैठकों में भाग ले सकेगा और इस समिति के अध्यक्ष को अटर्नी जनरल को समिति की कार्यवाहियों में भाग लेने के लिए निवेदन करने का हक होगा तथा जब भी वह उसमें भाग ले उसे मत देने का हक होगा।

(पैरा 3.13(3))

(6) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की किसी बैठक में उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय समिति में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा तथा मत समान होने की स्थिति में अध्यक्ष को एक दूसरा मत या कास्टिंग मत देने का अधिकार होगा। यह सब करने के लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 10 की उपधारा (2अ) जोड़ने की आवश्यकता है।

(पैरा 3.13(4))

(7) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की बैठक 3 मास में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए।

(पैरा 3.13(5))

(17) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) में संशोधन किया जाए जिससे कि भाष्विष्य वैष्विष्य को विधि विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक अध्ययन के एक विषय के रूप में प्रोन्नत करने में तथा विधि व्यवसायियों के लिए वैकल्पिक विवाद समझौता विषय पर निरन्तर शिक्षा को प्रोन्नत करने में समर्थ हो सके।

(पैरा 6.11)

(18) भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा व्यवसाय के लिए आवश्यक न्यूनतम मानक नियत करने का सिद्धांत इसी प्रकार से बना है। स्पष्ट है कि विष्विष्य अथवा विश्वविद्यालय इन मानकों में कमी नहीं कर सकते। तथापि, वे उच्चतर मानकों की अपेक्षा, उदाहरण के लिए एलएलएफ और पीएचडी की उपाधियों के लिए और एलएलबी की उपाधियों के लिए भी, निश्चित रूप से कर सकते हैं और उच्चतर मानक तय कर सकते हैं।

(पैरा 4.10 से 4.12)

(19) विष्विष्य तथा भाष्विष्य को तेजी के साथ विधि महाविद्यालय की संबद्धता तथा गुणावर्ण अवधारण की प्रक्रिया आरम्भ कर देनी चाहिए ताकि विभिन्न विधि विद्यालयों में प्रतिस्पर्धा का भाव उदित हो।

(पैरा 5.22)

(20) हम सिफारिश करते हैं कि धारा 7 (1) के खण्ड (ज) में संशोधन करके भाष्विष्य को सम्बद्ध अध्यापकों की नियुक्ति की प्रक्रिया और शर्तें निर्धारित करने के लिए सर्वतो बनाया जाए और ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति वकील संघों तथा सेवा निवृत्त न्यायाधीशों में से की जाए। यह कार्य राज्य विधिज्ञ परिषद् तथा भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति एवं विष्विष्य की विधि शिक्षा समिति के प्रामार्श से करना होगा।

(पैरा 7.12)

(21) यह भी प्रस्तावित है कि कोई भी विधि महाविद्यालय या किसी विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि अध्ययन का कोई ऐसा पाठ्यक्रम उपलब्ध न कराएं अथवा प्रदान न करें जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को अधिवक्ता के रूप में नामांकित किया जा सके तथा किसी भी विद्यार्थी को भाष्विष्य से इस बाबत पूर्व अनुमति प्रदान किए बिना किसी ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए। यह भी प्रस्तावित है कि किसी भी विधि महाविद्यालय को अथवा किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग को या किसी अन्य संस्था को ऐसे पाठ्यक्रम को और आगे चलते नहीं दिया जाना चाहिए यदि भारतीय विधिज्ञ परिषद् ने पहले प्रदान की गई अनुमति वापिस ले ली हो। हम यह प्रस्ताव भी करते हैं कि उपरोक्त अपेक्षा का उल्लंघन करते हुए यदि किसी व्यक्ति से प्रवेश के लिए कोई फीस या रकम, किसी भी रूप में, संग्रह की गई हो तो वह वापिस कर दी जाए। तदनुसार, उपरोक्त बातों को प्रस्तावित धारा 7 के रूप में सम्मिलित करने का प्रस्ताव किया जाता है। (विद्यमान धारा 7 को धारा 7 घ के रूप में युनिसंख्यांकित किया जाना चाहिए।

(पैरा 8.3.1 और 8.3.2)

(22) हम सिफारिश करते हैं कि—(प) विधि महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के विधि विभाग अथवा किसी अन्य संस्था द्वारा भाष्विष्य से पूर्व अनुमति प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए धारा 7 के रूप में एक पृथक उपबंध जोड़ा जाए।

(पैरा 8.13)

(23) हम यह सिफारिश भी करते हैं कि अधिवक्ता अधिनियम, 1961 में यह उपबंध करने के लिए पृथक उपबंध जोड़े जाएं कि भाष्विष्य और विष्विष्य विश्वविद्यालयों की निरीक्षण रिपोर्टों में यदि कोई असंगति है अथवा जहां प्रबंधतांत्र के दावे और निरीक्षण समिति के दावे के बीच कोई बड़ा अंतर है वहां एक टास्क फोर्स द्वारा एओआईसीओटीई के विनियमों के अनुरूप निरीक्षण किया जाना चाहिए और उस टास्क फोर्स में किसी न्यायिक अधिकारी को सदस्य के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

(पैरा 8.12)

(24) विद्यमान धारा 7 (1) (झ) का संबंध विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्रदान करने भात्र से है। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के निरीक्षण के प्रयोजन के लिए पृथक धारा 7 (ख) (ग) जोड़ी जाएंगी।

(पैरा 8.13)

(25) हम यह सिफारिश भी करते हैं कि 'समस्या पद्धति' को उपरोक्त प्रश्नपत्र में 75 प्रतिशत से अधिक तक परीक्षा प्रणाली में प्रवेश दिया जाए और सिद्धांत का भाग 25 प्रतिशत रहे। विद्यार्थियों को सिद्धांत (थोरी) के रूप से न्यूनतम अंक और परीक्षा में समस्या भाग के लिए पृथक न्यूनतम अंक प्राप्त करने होंगे। इससे विद्यार्थियों को प्रत्येक विषय में अपने मस्तिष्क का गंभीरतापूर्वक प्रयोग करने में सहायता मिलेंगी। इससे दुष्प्रथाएं भी समाप्त हो जाएंगी। कक्षा में उपस्थिति में भी अवश्य वृद्धि होगी।

(पैरा 9.21)

(26) आयोग यह मानता है कि निदानात्मक विधि शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए।

(पैरा 9.15)

हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

(न्यायम् जगन्नाथ राव)

अध्यक्ष

(डॉ एनएम घटाटे)

सदस्य

(टी०क० विश्वनाथन)

उपार्थ

अधिवक्ता (संशोधन) विधेयक, 2003

अधिवक्ता अधिनियम, 1961 तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 का और संशोधन करने के लिए एक

विधेयक

भारत गणराज्य के 54वें वर्ष में निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:-

संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ

1. (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम अधिवक्ता (संशोधन) विधेयक, 2003 है।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राज्य पत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।

धारा 2 का संशोधन

2. अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की (जिसे इसमें इसके पश्चात् मूल अधिनियम कहा गया है) उपधारा

(1) में -

(i) खण्ड (घ) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किया जाएगा:-

“(घक). ‘विधिज्ञ परिषद् विधि शिक्षा समिति’ से भाविष्य की वह विधि शिक्षा समिति अभिप्रेत है जो धारा 10 के उपखण्ड (2) के खण्ड (ख) के अधीन गठित की जाए;”

(ii) खण्ड (घ) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात्:-

“(ग) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन गठित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अभिप्रेत है;

(त) ‘विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विधि शिक्षा समिति’ से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 की धारा 5क के अधीन गठित विधि शिक्षा समिति अभिप्रेत है’।

धारा 6 का संशोधन

3. मूल अधिनियम की धारा 6 की (1) के खण्ड (झझ) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाएगा, अर्थात्:-

“(झझ). किसी ऐसे विश्वविद्यालय के विधि विश्वविद्यालय से संलग्न किसी विधि महाविद्यालय का, धारा 7ख की उपधारा (2) के अधीन दिए गए निदेशों के अनुसार परिभ्रमण और निरीक्षण करना।”

धारा 7 का संशोधन

4. मूल अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (1) में -

(क) खण्ड (ज) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखे जाएंगे, अर्थात्:-

“(ज) विधि शिक्षा का प्रोन्नयन तथा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की सिफारिशों के अनुसार जो कि धारा 10 अब में विनिर्दिष्ट रीति से तैयार की गई है, विधि शिक्षा के मानक अधिकथित करना जो कि निम्नलिखित विषयों के बारे में हो:-

(i) पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों का प्रवेश, अध्यापकों की नियुक्ति और अहंताओं से संबंधित मानकों का निर्धारण।

(ii) संबद्ध अध्यापकों की वकील संघों के सदस्यों तथा सेवा निवृत्त न्यायाधीशों में से नियुक्ति।

(iii) विधि शिक्षकों की सेवा की शर्तों का नियत किया जाना।

(iv) विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात नियत करना।

(v) विभिन्न शिक्षण पद्धतियों को ग्रहण करने के लिए मार्गनिर्देश अधिकथित करना।

(vi) विधि विद्यालयों के स्थान, मूल संरचना, पुस्तकालय तथा प्रबंध के बारे में शर्तें विनिर्दिष्ट करना।

(vii) विधि द्वारा आरम्भ की गई सम्बद्ध स्कीम, यदि कोई है, के प्रयोजनों के लिए विधि शिक्षा में श्रेष्ठता का प्रोन्नयन।

(viii) विधि विद्यालयों के लिए शैक्षणिक अध्ययन के विषय के रूप में वैकल्पिक विवाद समाधान का प्रोन्नयन तथा;

(ix) विधि व्यवसायियों के लिए वैकल्पिक विवाद समाधान विषय पर सतत शिक्षा का प्रोन्नयन।

(जक) विधि व्यवसाय के लिए यह सुनिश्चित करना कि विधि व्यवसाय के लिए नामांकन के इच्छुक अध्यार्थियों को, विधि व्यवसायियों के साथ संलग्न करके, पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है तथा धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (घ) के उपर्योगों के अनुसार, ऐसे विद्यार्थियों के लिए विधिज्ञ परीक्षा के संचालन से संबंधित विषयों के लिए उपबंध करना”;

(ख) खण्ड (झ) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाएगा, अर्थात्:-

“(झ) उन विश्वविद्यालयों को, जिनकी विधि की उपाधि अधिवक्ता के रूप में नामांकित किए जाने के लिए अहंता होगा, मान्यता प्रदान करना या मान्यता को रद्द करना अथवा किसी विश्वविद्यालय को यह निदेश देना कि वह विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करके किसी विधि महाविद्यालय की किसी विश्वविद्यालय के साथ संलग्नता को समाप्त कर दे।”

(ग) खण्ड (झग) के निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किए जाएंगे:-

“(झघ). किसी विश्वविद्यालय के विधि विभाग को अथवा किसी विधि महाविद्यालय को अधिवक्ता के रूप में नामांकित करने के लिए विधि के अध्ययन की शिक्षा प्रदान करने के किसी ऐसे पाठ्यक्रम को चलाने की अनुमति प्रदान करना अथवा विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति से परामर्श करके ऐसी अनुमति को वापिस लेना;

(झछ) विधि अध्यापकों को विधि शिक्षा प्रदान करते रहने के लिए केन्द्रीय सरकार को स्थान स्थापित करने में सुविधा प्रदान करने के लिए आवश्यक उपाय करना;

(झच). केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के परामर्श से विधि शिक्षा के मानकों को विकसित करने के लिए उपाय करें;

(झछ). भारतीय विधिज्ञ परिषद् के और सभी राज्य विधिज्ञ परिषदों के कार्यालयों तथा विश्वविद्यालयों और विधि महाविद्यालयों में विधि शिक्षा कार्यालयों की स्थापना करके विधि शिक्षा के अद्यतन स्वरूपों के बारे में जागृति पैदा करना;”

नई धारा 7क से 7ग तक का अंतःस्थापन

5. मूल अधिनियम की धारा 7क को उसकी धारा 7ग के रूप में पुनः संख्यांकित किया जाएगा तथा इस प्रकार पुनः संख्यांकित धारा 7ग से पूर्व निम्न धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:-

भारतीय विधिज्ञ परिषद की पूर्व अनुमति/अनुज्ञा:

“7क. (1) अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के प्रारम्भ होने के पश्चात् कोई भी विधि महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि अध्ययन का कोई ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तावित नहीं करेगा या प्रदान नहीं करेगा जिसके परिणामस्वरूप अधिवक्ता के रूप में किसी व्यक्ति को नामांकित किया जाए, तथा किसी विद्यार्थी को ऐसे पाठ्यक्रम में तब तक प्रवेश नहीं दिया जाएगा जब तक भाग्विष्प द्वारा ऐसा पाठ्यक्रम आरम्भ करने की पूर्व अनुमति प्रदान नहीं कर दी जाएः

परन्तु, अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के प्रारम्भ से पूर्व भारतीय विधिज्ञ परिषद् नियमों के अंतर्गत प्रदान की गई कोई अनुमति या उसके साथ संलग्नता का कोई अनुमोदन इस उपधारा के अधीन प्रदत्त अनुमति मानी जाएगी।

(2) कोई विधि महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का विधि विभाग अथवा कोई अन्य संस्था विधि में अध्ययन के ऐसे किसी पाठ्यक्रम को चालू नहीं रखेगा जिसके परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति को अधिवक्ता के रूप में नामांकित किया जा सकता है, तथा किसी भी विद्यार्थी को ऐसे पाठ्यक्रम में प्रवेश नहीं दिया जाएगा यदि उपधारा (1) के अंतर्गत प्रदान की गई अनुमति को भाग्विष्प ने वापिस ले लिया है।

(3) उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का उल्लंघन करके प्रवेश के लिए संग्रह की गई फीस या रकम, चाहे वह किसी भी नाम से संग्रह की गई हो, वापिस कर दी जाएगी।

(4) उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का कोई भी उल्लंघन धारा 45क के अधीन दण्डनीय अपराध होगा। (विद्यमान धारा 7क को धारा 7ध के रूप में पुनःसंरचारित किया जाना चाहिए)।

विधिमहाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों का निरीक्षण

“7ख. (1) भाग्विष्प, मान्यता या अनुमति प्रदान करने के प्रयोजन के लिए अथवा यह अधिनियित करने के लिए कि विधि शिक्षा के मानकों को बनाए रखा जा रहा है या नहीं निम्नलिखित का परिभ्रमण या निरीक्षण कर सकती है—

(i) विश्वविद्यालय जो विधि की उपाधि प्रदान करता है;

(ii) विश्वविद्यालय का विधि विभाग;

(iii) किसी विश्वविद्यालय से सम्बद्ध/संलग्न विधि महाविद्यालय।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, भाग्विष्प राज्य विधिज्ञ परिषद् को, उस उपधारा में विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए, उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी विश्वविद्यालय, विभाग या विधि महाविद्यालय का परिभ्रमण या निरीक्षण करने का तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश भी दे सकती है।

टास्क फोर्स (कार्य दल)

“7ग. (1) जहां विधिज्ञ परिषद् द्वारा धारा 7 (ख) के अधीन दी गई रिपोर्टों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी गई रिपोर्ट के बीच कोई तात्त्विक प्रकृति का अंतर है तथा रिपोर्टों का संबंध किसी विश्वविद्यालय या किसी विश्वविद्यालय के विभाग से है, वहां एक टास्क फोर्स द्वारा, जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, आगे और निरीक्षण किया जाएगा—

(i) भाग्विष्प द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;

(iii) राज्य सेवा का एक न्यायिक अधिकारी जिसे संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा।

(2) जहां विधिज्ञ परिषद् द्वारा धारा 7 (ख) के अधीन दी गई रिपोर्टों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा दी गई रिपोर्ट के बीच कोई तात्त्विक प्रकृति का अंतर है तथा रिपोर्टों का संबंध उस विश्वविद्यालय

से संलग्न किसी विधि महाविद्यालय से है, वहां एक टास्क फोर्स द्वारा, जिसमें निम्नलिखित व्यक्ति होंगे, आगे और निरीक्षण किया जाएगा—

(i) राज्य विधिज्ञ परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;

(ii) संबंधित विश्वविद्यालय द्वारा नामनिर्दिष्ट दो सदस्य;

(iii) राज्य सेवा का एक न्यायिक अधिकारी जिसे संबंधित राज्य के मुख्य न्यायाधिपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाएगा।

(3) भाग्विष्प टास्क फोर्स की रिपोर्ट के प्रकाश में अन्य रिपोर्टों पर विचार करेगी तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार निर्णय लेगी।”

धारा 10 का संशोधन

6. मूल अधिनियम की धारा 10 के,

(क) उपधारा (2) के खण्ड (ख) के स्थान पर, निम्नलिखित खण्ड रखा जाएगा, अर्थात्:

“ख भारतीय विधिज्ञ परिषद् की एक विधि शिक्षा समिति जिसमें निम्नलिखित होंगे—

(i) भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा अपने सदस्यों में से निर्वाचित पांच सदस्य;

(ii) उच्चतम न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश जिसका नाम निर्देशन भारत का मुख्य न्यायाधिपति करेगा तथा वह समिति का अध्यक्ष होगा;

(iii) किसी उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त एक मुख्य न्यायाधिपति अथवा उच्च न्यायालय का एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश जिसका नामनिर्देशन भारत का मुख्य न्यायाधिपति करेगा;

(iv) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विधि शिक्षा समिति के तीन सदस्य जिनका नाम निर्देशन उक्त आयोग करेगा;

(v) भारत का अट्टींजनरल जो अपने विकल्प से अथवा भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के अध्यक्ष के आमंत्रण पर समिति की किसी बैठक में भाग ले सकेगा और यदि वह उसमें भाग लेता है तो उसे मतदान का अधिकार होगा।”

(ख) उपधारा (2) के पश्चात् निम्नलिखित उपधाराएं अंतःस्थापित की जाएंगी, अर्थात्:

“(2क) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की किसी बैठक में उठने वाले सभी प्रश्नों का विनिश्चय समिति में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत से किया जाएगा तथा मत समान होने की स्थिति में अध्यक्ष को एक दूसरा मत या कास्टिंग मत देने का अधिकार होगा। यह सब करने के लिए अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 1961 की धारा 10 में उपधारा (2अ) जोड़ने की आवश्यकता है।

(2ख) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की बैठक 3 मास में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए।

धारा 10 का संशोधन

7. मूल अधिनियम की धारा 10अ की उपधारा (4) में, “उसकी प्रत्येक समिति, सिवाय अनुशासनात्मक समितियों के” शब्दों के स्थान पर “उसकी प्रत्येक समिति, सिवाय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति और अनुशासनात्मक समितियों के” शब्द रखे जाएंगे।

नई धारा 10क का अंतःस्थापन

8. मूल अधिनियम की धारा 10क के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएंगी:-

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति की परामर्श प्रक्रिया:

“10अ. धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) के अधीन परामर्श की प्रक्रिया निम्नलिखित होगी, अर्थात्:-

(क) व्यावसायिक विधि शिक्षा के मानकों से संबंधित प्रस्तावों की बाबत, विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति सर्वांगी राज्य विधिज्ञ परिषद् के साथ परामर्श करेगी और अनन्तिम प्रस्ताव तैयार करेगी और उन्हें वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति को उन प्रस्तावों पर उनके विचार प्राप्त करने के लिए संसूचित करेगी।

(ख) वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति के विचार प्राप्त होने के पश्चात् विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति उन पर विचार करेगी और अंतिम निर्णय पर पहुंचेगी।

(ग) विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के अंतिम निर्णयों को जो उसने खण्ड (ख) के अंतर्गत निकाले हैं, भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा प्रवर्तित किए जाएंगे तथा सभी विश्वविद्यालयों पर और विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध सभी विधि महाविद्यालयों पर वहां तक बाध्यकर होंगे जहां तक उनका संबंध विधि व्यवसाय करने के लिए विधि संघ में नामांकन कराने के लिए विद्यार्थियों के लिए विधि शिक्षा के आवश्यक मानकों से है;

(घ) वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति खण्ड (क) में निर्दिष्ट विषयों की बाबत कोई भी प्रस्ताव विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति के विचारार्थ भेज सकेगी।

(ङ) यदि वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति को खण्ड (घ) के अंतर्गत कोई प्रस्ताव प्राप्त होता है तो विधिज्ञ परिषद् की विधि शिक्षा समिति खण्ड (क) से खण्ड (ग) तक में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुसरण करेगी;

(च) विधि शिक्षा के मानक, जिन्हें इस धारा के अधीन अंतिम रूप दिया जाएगा, न्यायालयों में विधि व्यवसाय के लिए विधिज्ञ संघ में नामांकन कराने के लिए विद्यार्थियों के लिए आवश्यक न्यूनतम मानक होंगे।

धारा 24 का संशोधन

9. मूल अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (ग) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किया जाएगा:-

“(घ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (झ) के अधीन मान्यता प्राप्त विधि उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् वह किसी विधि व्यवसायी के साथ संलग्न रहकर, जिसे दस वर्ष से अधिक का अनुभव है, किसी अवधि तक, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, प्रशिक्षण प्राप्त करता है और ऐसी रीति से, जो भा.वि.प. द्वारा विहित की जाए, परीक्षा में अर्हता प्राप्त कर लेता है।”

धारा 24क का संशोधन

10. मूल अधिनियम की धारा 24क की उपधारा (1) के खण्ड (ग) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किया जाएगा:-

(क) “राज्य के अंतर्गत नियोजन या पद शब्दों के स्थान पर ‘कोई नियोजन या पद’ शब्द रखें जाएंगे।

(ख) स्पष्टीकरण और परन्तुक का लोप किया जाएगा।

नई धारा 45क का अंतःस्थापन

11. मूल अधिनियम की धारा 45 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:-

भारतीय विधिज्ञ परिषद् की पूर्व अनुमति के बिना शिक्षा प्रदान करने के लिए शास्ति

“45क. (1) यदि कोई व्यक्ति, जिसके अंतर्गत कोई संस्था, कम्पनी, सोसायटी, न्यास या निकाय भी आता है, अधिवक्ता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के आरम्भ के पश्चात् धारा 7क

की उपधारा (1) और (2) के उपबंधों का उल्लंघन करता है तो वह साधारण कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकती है, अथवा जुमाने से, जो 50000 रुपए तक हो सकता है, अथवा दोनों से, दण्डनीय होगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन उल्लिखित अपराध का विचारण किसी मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट अथवा प्रथम श्रेणी के न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा, जैसी भी स्थिति हो, किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) के अधीन उल्लिखित अपराध यदि किसी संस्था, कम्पनी, सोसायटी, न्यास या निकाय द्वारा किया जाता है तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो अपराध किए जाने के समय ऐसी संस्था, कम्पनी, सोसायटी, न्यास या निकाय के मामलों के संचालन के लिए उत्तरदायी हो और ऐसी संस्था, कम्पनी, सोसायटी, न्यास या निकाय भी, अपराध का दोषी माना जाएगा तथा तदनुसार उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी और उसे दण्ड दिया जाएगा:

परन्तु इस धारा की किसी बात के कारण कोई ऐसा व्यक्ति किसी दण्ड के दायित्वाधीन नहीं होगा यदि वह यह साक्षित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा ऐसे अपराध को रोकने के लिए उसने सभी सम्यक् तत्परता बरती थी।”

धारा 49 का संशोधन

12. मूल अधिनियम की धारा 49 की उपधारा (1) में-

(प) खण्ड (कज) के पश्चात् निम्नलिखित खण्ड अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात्:-

“(कझ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (जक) तथा धारा 24 की उपधारा (1) के खण्ड (घ) के अंतर्गत प्रशिक्षण की अवधि तथा विधिज्ञ परीक्षा का संचालन और उनसे संबंधित विषयः

“(कझ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (झ) में यथानिर्दिष्ट किन्हीं विश्वविद्यालयों को मान्यता प्रदान करने और मान्यता रद्द करने की बाबत प्रक्रिया तथा किसी विधि महाविद्यालय की संलग्नता समाप्त करने के लिए किसी विश्वविद्यालय को निदेश जारी करने की बाबत प्रक्रिया;

(कट) विधि महाविद्यालय, किसी विश्वविद्यालय के विभाग या किसी अन्य संस्था को शिक्षा प्रदान करने की अनुमति देने की बाबत प्रक्रिया तथा धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (झथ) में यथानिर्दिष्ट, ऐसी अनुमति को वापिस लेने की बाबत प्रक्रिया।”

(ii) खण्ड (घ) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रखा जाएगा:-

“(घ) धारा 7 की उपधारा (1) के खण्ड (ज) में यथानिर्दिष्ट, विधि शिक्षा के मानक जिनका अनुपालन विश्वविद्यालय को तथा विश्वविद्यालय से संलग्न महाविद्यालय को करना होगा तथा धारा 7ख और धारा 7ग में यथाविनिर्दिष्ट के अनुसार ऐसे विश्वविद्यालय और विधि महाविद्यालय के निरीक्षण की रीति।”

1956 के अधिनियम 3 का संशोधन

13. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 में धारा 5 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित का जाएगी, अर्थात्:-

“विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की विधि शिक्षा समिति

5अ. (1) आयोग वि.अ.आ. की एक विधि शिक्षा समिति का गठन करेगी जिसमें 10 सदस्य होंगे जिनमें से-

(क) छह प्रोफेसर, डीन या प्रधानाध्यापक की रैंक के कार्यरत विधि शिक्षक होंगे और अन्य भी उसी रैंक के व्यक्ति होंगे।

(ख) दो सदस्य प्रोफेसर, डीन या प्रधानाध्यापक या समतुल्य रैंक के सेवानिवृत् विधि शिक्षक होंगे।

- (ग) दो सदस्य विधि द्वारा स्थापित विधि विश्वविद्यालय के उपकूलपति या निदेशक होंगे।
- (2) वि.अ.आ. की विधि शिक्षा समिति अधिवक्ता अधिनियम, 1961 की धारा 7 (1) के खण्ड (ज) के प्रयोजन के लिए सभी विश्वविद्यालयों और विधि महाविद्यालयों का प्रतिनिधित्व करेगी।
- (3) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग निम्नलिखित सदस्य नामनिर्दिष्ट करेगा—
- (क) उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट 6 सदस्यों में से दो सेवारत विधि अध्यापक;
- (ख) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में निर्दिष्ट प्रबंग में से एक सदस्य।
- उक्त व्यक्ति अधिवक्ता अधिनियम, 1961 (1961 का अधिनियम 25) की धारा 10 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) के उपखण्ड (पअ) के प्रयोजन के लिए विधि परिषद् की विधि शिक्षा समिति के सदस्य होंगे।”

PLD-92-CLXXXIV (Hindi)
75—2005 (DSK-IV)

Price : Rs. 1430.00 Foreign £ 21.00 or cents 29.79.

PRINTED BY THE MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, MINTO ROAD, NEW DELHI
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI—2005.